फरवरी –2023

अखण्ड ज्योति

धर्म एवं अध्यात्म के तत्त्वज्ञान का वैज्ञानिक विश्लेषण

वर्ष–87 । अंक–2 । प्रति–₹ 25 । ₹–300 वार्षिक

7 आध्यात्मिक वेला है ब्राह्ममुहूर्त

18 महाकाल की अभ्यर्थना का केंद्र

24 आत्मसाक्षात्कार से आनंद की ओर

45 धरती के रहस्यमयी स्थल

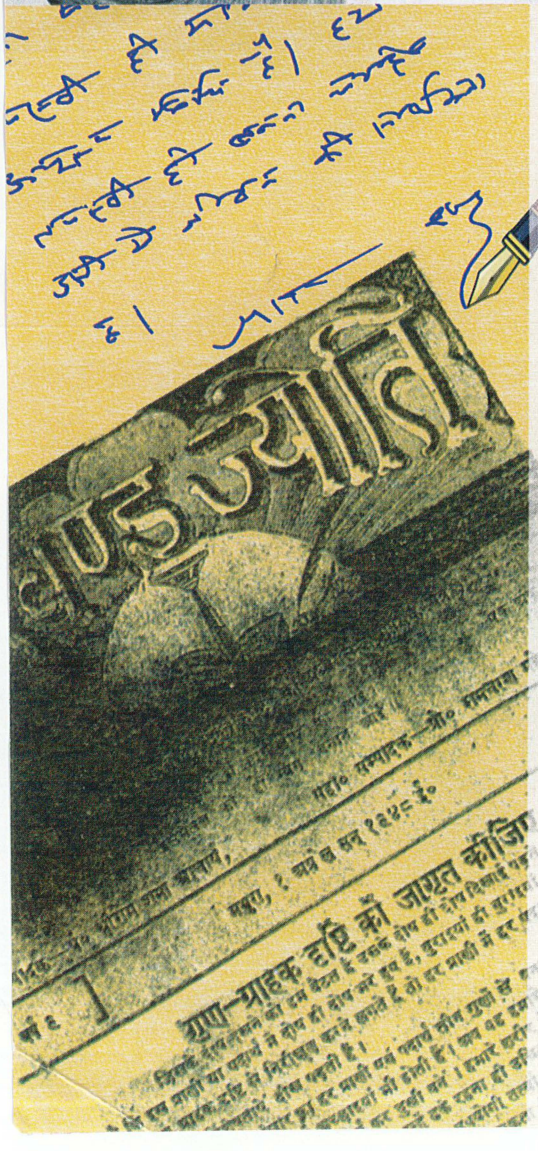

पराजय विजय की पहली सीढ़ी है

यदि सच्चा प्रयत्न करने पर भी तुम सफल न हो तो कोई हानि नहीं। पराजय बुरी वस्तु नहीं है, यदि वह विजय के मार्ग में अग्रसर होते हुए मिली हो। प्रत्येक पराजय विजय की दिशा में कुछ आगे बढ़ जाना है। उच्चतर ध्येय की ओर पहली सीढ़ी है। हमारी प्रत्येक पराजय यह स्पष्ट करती है कि अमुक दिशा में हमारी कमजोरी है, अमुक तत्त्व में हम पिछड़े हुए हैं या किसी विशिष्ट उपकरण पर हम समुचित ध्यान नहीं दे रहे हैं। पराजय हमारा ध्यान उस ओर आकर्षित करती है, जहाँ हमारी निर्बलता है, जहाँ मनोवृत्ति अनेक ओर बिखरी हुई है, जहाँ विचार और क्रिया परस्पर विरुद्ध दिशा में बह रहे हैं, जहाँ दुःख,क्लेश, शोक, मोह इत्यादि परस्पर विरोधी इच्छाएँ हमें चंचल कर एकाग्र नहीं होने देतीं।

किसी-न-किसी दिशा में प्रत्येक पराजय हमें कुछ सिखा जाती है। मिथ्या कल्पनाओं को दूर कर हमें कुछ - न- कुछ सबल बना जाती है, हमारी विच्छृंखल वृत्तियों को एकाग्रता का रहस्य सिखाती है। अनेक महापुरुष केवल इसी कारण सफल हुए; क्योंकि उन्हें पराजय की कड़ुआहट को चखना पड़ा था।

— पंडित श्रीराम शर्मा आचार्य

संस्थापक-संरक्षक
वेदमूर्ति तपोनिष्ठ
पं० श्रीराम शर्मा आचार्य
एवं
शक्तिस्वरूपा
माता भगवती देवी शर्मा
संपादक
डॉ० प्रणव पण्ड्या
कार्यालय
बिरला मंदिर के सामने मथुरा-वृंदावन रोड जयसिंहपुरा, मथुरा (281003)
दूरभाष नं० (0565) 2403940, 2972449
2412272, 2412273
मोबाइल नं० 9927086291
7534812036
7534812037
7534812038
7534812039
कृपया इन मोबाइल नंबरों पर एस. एम. एस. न करें।
नया ईमेल-
akhandjyoti@akhandjyotisansthan.org
प्रातः 10 से सायं 6 तक

वर्ष	:	87
अंक	:	02
फरवरी	:	2023
माघ-फाल्गुन	:	2079
प्रकाशन तिथि	:	01.01.2023

वार्षिक चंदा

भारत में	:	300/-
विदेश में	:	2800/-
आजीवन (बीसवर्षीय)		
भारत में	:	6000/-

उपासना

उपासना तभी लाभकारी हो पाती है, जब उसमें निरंतरता हो। यह उस सर्वशक्तिमान सत्ता से जुड़ने का सशक्त व प्रभावकारी माध्यम है, जिसने संपूर्ण सृष्टि का निर्माण किया। उपासना के माध्यम से ही मनुष्य का सर्वांगीण विकास सुनिश्चित हो पाता है। उपासना मात्र प्रार्थना ही नहीं है, बल्कि हमारे कर्मों के माध्यम से भी उपासना संभव है। यह संपूर्ण जगत् उसी एक परमात्मा की अभिव्यक्ति है और यदि हम निष्काम भाव से कर्म करते हैं तो हमारा प्रत्येक कृत्य उसी विधाता के चरणों में उपासना के भाव से समर्पित हो जाता है।

ऐसा करने से न केवल हमारे अपने विकास का पथ प्रशस्त होता है, वरन ईश्वरीय अनुदानों को प्राप्त करना भी संभव हो पाता है। स्वार्थ भावना से किए गए कर्मों की तुलना में निष्काम भाव से ईश्वर को समर्पित करके किए गए कर्म ज्यादा प्रभावी परिणाम ले करके आते हैं। वही सच्ची उपासना है। परमपूज्य गुरुदेव ने उपासना को आध्यात्मिक यात्रा का प्रथम चरण कहकर पुकारा है। यह कहा है कि उपासना उस सर्वशक्तिमान दैवी चेतना से जुड़ने का वह सशक्त माध्यम है, जिसके माध्यम से व्यक्ति आध्यात्मिक विभूतियों का व संपदाओं का अधिकारी बन पाता है। यह उस अंतिम, चरम एवं परम पड़ाव को प्राप्त करने का माध्यम है, जिसको प्राप्त करने के बाद इस संसार में और कुछ भी प्राप्त करना शेष नहीं रह जाता है। उपासना ही आध्यात्मिक त्रिवेणी की निर्मल गंगा जलधारा है। ❑

विषय सूची

- आवरण-1 — 1
- आवरण-2 — 2
- उपासना — 3
- **विशिष्ट सामयिक चिंतन**
  पर्यावरण संतुलन हेतु कुछ प्रभावी उपाय — 5
- आध्यात्मिक वेला है ब्राह्ममुहूर्त — 7
- हमने आँगन नहीं बुहारा, कैसे आएँगे भगवान? — 11
- प्रतिभावान आगे आएँ — 17
- **पर्व विशेष—महाशिवरात्रि**
  महाकाल की अभ्यर्थना का केंद्र — 18
- आत्मज्ञान ही है सर्वोपरि संपदा — 21
- आत्मसाक्षात्कार से आनंद की ओर — 24
- श्रेष्ठतम आध्यात्मिक मार्ग है योग — 27
- जीवन-साधना के त्रिविध आधार—
  श्रद्धा, प्रज्ञा और निष्ठा — 30
- भगवत्प्राप्ति क्यों और कैसे? — 32
- आत्मबल—जीवन की सर्वोपरि संपदा — 35
- **पूज्य गुरुदेव जैसा मैंने देखा-समझा—5**
  इस युग के अनुपम जादूगर — 37
- **चेतना की शिखर यात्रा—245**
  प्रज्ञावतार के लीला केंद्र — 38
- **ब्रह्मवर्चस-देव संस्कृति शोध सार—166**
  विपश्यना का प्रभाव — 42
- धरती के रहस्यमयी स्थल — 45
- **युगगीता—273**
  सात्त्विक, राजसिक एवं तामसिक यज्ञ — 48
- गरम होती धरती और आसन्न संकट — 51
- **वंदनीया माताजी की अमृतवाणी**
  गायत्री-उपासना का प्रतिफल — 54
- **विश्वविद्यालय परिसर से—212**
  मानवीय गरिमा का गौरव केंद्र बना विश्वविद्यालय — 62
- **अपनों से अपनी बात**
  वासंती उल्लास का समय — 64
- युगावतार शिव रूप (कविता) — 66
- आवरण—3 — 67
- आवरण—4 — 68

आवरण पृष्ठ परिचय

गुरुसत्ता एवं उनके प्रतीक शक्तिकेंद्र

फरवरी-मार्च, 2023 के पर्व-त्योहार

बुधवार	01 फरवरी	जया एकादशी	सोमवार	06 मार्च	होलिका दहन
रविवार	05 फरवरी	माघ पूर्णिमा/संत रविदास जयंती	मंगलवार	07 मार्च	होली, धूलिवंदन
गुरुवार	16 फरवरी	विजया एकादशी 'स्मा.'	बुधवार	15 मार्च	शीतलाष्टमी
शनिवार	18 फरवरी	महाशिवरात्रि	शनिवार	18 मार्च	पापमोचनी एकादशी
सोमवार	20 फरवरी	सोमवती अमावस्या	बुधवार	22 मार्च	नवरात्रारंभ/ नवसंवत्सरारंभ
मंगलवार	21 फरवरी	श्री रामकृष्ण परमहंस जयंती			
शनिवार	25 फरवरी	सूर्य षष्ठी	सोमवार	27 मार्च	सूर्य षष्ठी
शुक्रवार	03 मार्च	आमलकी एकादशी	गुरुवार	30 मार्च	श्रीराम नवमी

★ **यह पत्रिका आप स्वयं पढ़ें तथा औरों को पढ़ाएँ। कुछ समय के बाद किसी अन्य पात्र को दे दें, ताकि ज्ञान का आलोक जन-जन तक फैलता रहे। —*संपादक***

पर्यावरण संतुलन हेतु कुछ प्रभावी उपाय

विगत दिनों कोविड-19 की महामारी के प्रकोप के दिनों ने इस सत्य से हमें गंभीरता से परिचित कराया कि हम क्यों उन दिनों की ओर नहीं लौटना चाहेंगे, जब ऐसी महामारियाँ प्रचुरता के साथ प्रभुत्व में थीं। कुछ शताब्दियों की कहानियाँ तो इतनी चिंताजनक हैं कि उन शताब्दियों में 5-6 वर्ष के अंतराल में ही प्लेग जैसी महामारी ने लगभग तीन-चौथाई यूरोप की आबादी को पूर्णरूपेण समाप्त कर दिया था।

ऐसी बीमारियों के प्रति खोजे गए इलाजों, स्वच्छता एवं पौष्टिक आहार की सुविधाओं ने मानवीय अस्तित्व को और मजबूत करने में एक गंभीर भूमिका का निर्वहन किया था। कोविड-19 ने उस भय और आशंका को पुन: जन्म दे दिया जिनसे एक समय ऐसा लगने लगा था कि अब हम सदा के लिए मुक्ति पा चुके हैं।

उदाहरण के तौर पर सन् 1860 के आँकड़ों को यदि हम देखें तो उस समय इंफेंट मोर्टेलिटी रेट यानी छोटे बच्चों की, नवजात शिशुओं की मृत्यु दर 40% थी अर्थात 100 में से मात्र 60 बच्चे जीवित रह पाते थे। आज यह दर घटकर 4% रह गई है। जीवन प्रत्याशा या लाइफ एक्सपेंटेंसी, जो सन् 1900 में 46.3 थी अब 80 के करीब पहुँच चुकी है।

इन परिवर्तनों ने निश्चित रूप से वैश्विक जनसंख्या के ऊपर बहुत हद तक सार्थक प्रभाव डाला है। चूँकि मृत्यु दर घटी है एवं जीवन प्रत्याशा बढ़ी है, इसलिए सन् 1800 में जहाँ एक खरब के करीब विश्व की जनसंख्या थी तो वहीं आज वह जनसंख्या बढ़ते-बढ़ते 6.6 खरब तक पहुँच चुकी है और ऐसा होने में 200 से कुछ ज्यादा ही वर्ष मात्र लगे हैं। संयुक्त राष्ट्र संघ का जनसंख्या आयोग अनुमान लगाता है कि सन् 2050 तक ये आँकड़े 9.6 खरब एवं सन् 2100 तक 10.9 खरब तक पहुँच चुके होंगे।

यहाँ यह भी ध्यान रखना आवश्यक है कि ये आँकड़े तो वर्तमान जन्म दर, मृत्यु दर इत्यादि पर आधारित हैं, परंतु यदि ये दरें और परिवर्तित होती गईं, तो जनसंख्या में और भी ज्यादा बढ़ोतरी की संभावना को नकारा नहीं जा सकता है। उदाहरण के तौर पर यदि जन्म दर में आधे प्रतिशत का भी अंतर आता है तो सदी के अंत तक जनसंख्या 16 खरब तक पहुँच सकती है।

सामान्य दृष्टि से देखने पर लगता है कि यदि जनसंख्या कम हो तो वैश्विक संसाधन कम खरच होंगे, कम कार्बन उत्सर्जन होगा और परिणाम में सभी को रहने के लिए एक बेहतर ग्रह भी मिलेगा। सन् 2017 में स्वीडन की प्रसिद्ध वैज्ञानिक किंवरली निकोल्स ने यह बताया था कि यदि हर परिवार दो के स्थान पर मात्र एक बच्चे को जन्म दे तो ये अकेला प्रयास ही 120 टन CO_2 की मात्रा को कम कर सकता है। इसके अतिरिक्त यदि ये लोग कारों का उपयोग न करें तो उक्त आँकड़ों में और भी कमी आ सकती है।

सामान्य दृष्टि से देखने पर ऐसा लगता है कि वर्तमान पर्यावरण संकट के समाधान के लिए एक बड़ा उपाय हो सकता है और इसमें कोई शंका नहीं कि जनसंख्या पर नियंत्रण इस दिशा में एक कारगर

समाधान सिद्ध होगा। सत्य यह है कि यह इस समीकरण का एक ही पहलू है।

ऐसा इसलिए कि जहाँ यह सत्य है कि विश्व की जनसंख्या बढ़ रही है, वहाँ यह भी सत्य है कि विश्व में प्रजनन दर में तेजी से गिरावट आई है। दक्षिण अमेरिका में जहाँ यह दर लगभग समानता की स्थिति में है तो वहीं जापान, दक्षिण कोरिया, रूस से लेकर एशिया के विभिन्न देशों में यह गिरावट की ओर है। भारत का ही यदि उदाहरण लें तो यह दर विगत 50 वर्षों में 2% से भी ज्यादा गिर चुकी है।

इसलिए यहाँ यह सत्य है कि जनसंख्या पर नियंत्रण पर्यावरण संतुलन की दिशा में एक बड़ा कदम हो सकता है तो वहीं अन्य उपायों पर भी दृष्टि दौड़ा लेना उचित होगा। उदाहरण के तौर पर यदि बांग्लादेश को देखें तो उन्होंने सन् 2002 के बाद से प्रारंभ किए गए सौर ऊर्जा के प्रयासों के द्वारा 45 लाख घरों में 2 करोड़ लोगों तक सौर ऊर्जा की व्यवस्था की है।

इस अकेले प्रयास के द्वारा 5,80,000 टन CO_2 उत्सर्जन को रोका जा सकता है। कुछ ऐसा ही प्रयास अन्य देशों द्वारा भी किया जा सकता है। कुछ ऐसा ही प्रयास कोलंबिया द्वारा हर तरह की यात्रा में बेहतर बसों के उपयोग से किया, जिसके कारण 600 टन CO_2 उत्सर्जन को रोका जा सका। जर्मनी में नए तरह के घरों के निर्माण से, जिनमें CO_2 उत्सर्जन रोकने वाली इंसुलेशन सामग्री का उपयोग किया गया था—6,00000 टन CO_2 उत्सर्जन को रोका जा सका।

मैक्सिको में वहाँ की सरकार द्वारा एक अद्भुत योजना को प्रारंभ किया गया, जिसमें यदि घर खरीदने वाले लोग ऐसे घरों को खरीदने जाते हैं जिनमें सौर ऊर्जा संयंत्र हों, एनर्जी सेविंग लाइटें हों, जल संरक्षण के लिए टंकी हो तो उनको खरीदने के लिए धनराशि में सरकार एक बड़ी मुद्रा को अदा करेगी।

इस प्रयास ने सभी बिल्डर्स को ऐसे ही घर बनाने के लिए प्रेरित किया और उसी के परिणामस्वरूप आज वहाँ 3,00000 टन CO_2 के उत्सर्जन को रोक पाना संभव हो सका। भारत में ऐसा ही प्रभावकारी प्रयास छत पर सौर ऊर्जा की छत व्यवस्था बनाने से किया गया, जिससे लगभग इतनी ही मात्रा में CO_2 के उत्सर्जन को रोक पाना संभव हो सका। निश्चित रूप से ऐसे प्रयास अन्य देशों द्वारा भी किए जा सकते हैं।

अन्य ऐसे ही प्रेरक उदाहरणों में ब्राजील का उदाहरण है, जहाँ सरकार पेड़ लगाने पर, प्राकृतिक खाद का उपयोग करने पर किसानों को ऋणमुक्ति देती है। ऐसे ही खराब होते भोजन की खाद बनाने पर फिनलैंड की सरकार, वहाँ के निवासियों को कर में छूट देती है।

नमोऽस्तु गुरवे तस्मै गायत्रीरूपिणे सदा।
यस्य वागमृतं हन्ति विषं संसारसंज्ञकम्॥

अर्थात सर्वदा गायत्री रूप में विद्यमान रहने वाले उन सद्गुरुदेव को हम नमस्कार करते हैं, जिनकी वाणीरूपी अमृत से संसाररूपी विष नष्ट हो जाता है।

इन छोटे-छोटे प्रयासों से ही जहाँ ब्राजील ने तापमान की बढ़ती दर पर नियंत्रण पाने का कार्य किया है तो वहीं फिनलैंड ने मात्र घरों में छोटे परिवर्तन करके 82,00,000 टन CO_2 उत्सर्जन को रोकने का कार्य किया है। ये कुछ ऐसे प्रयास हैं, जिनके द्वारा अनेकों के जीवन में सार्थक परिवर्तन लाना संभव हो पाया है।

ऐसे ही प्रयासों को अन्य अनेकों के द्वारा निरंतर एवं बेहतर तरीके से करने पर पर्यावरण असंतुलन पर निश्चित रूप से नियंत्रण कर पाना संभव है। ❑

आध्यात्मिक वेला है ब्राह्ममुहूर्त

भारतीय ज्योतिष शास्त्र और हिंदू धर्मग्रंथों में मुहूर्त का विशेष महत्त्व है। हममें से अधिकांश लोग कोई भी शुभ काम करने से पहले मुहूर्त अवश्य निकलवाते हैं। आखिर यह मुहूर्त है क्या? ज्योतिष शास्त्र के अनुसार मुहूर्त एक ऐसी तालिका है, जो खगोलीय स्थिति के आधार पर दिन के 24 घंटों की दशा बताती है।

ज्योतिष शास्त्र के अनुसार दिन के 24 घंटों में 30 मुहूर्त होते हैं। दिन-रात का 30वाँ भाग मुहूर्त कहलाता है यानी 2 घड़ी या 48 मिनट का कालखंड एक मुहूर्त कहलाता है। सूर्योदय के पूर्व के प्रहर में दो मुहूर्त होते हैं। ब्राह्ममुहूर्त रात का चौथा प्रहर होता है। सूर्योदय के पूर्व के प्रहर में दो मुहूर्त होते हैं। इनमें से पहले मुहूर्त को ब्राह्ममुहूर्त और बाद वाले को विष्णुमुहूर्त कहते हैं। इस समय सुबह तो हो जाती है, पर आकाश में सूर्य पूरी तरह से दिखाई नहीं देता।

ब्राह्ममुहूर्त कई दृष्टिकोण से बहुत ही महत्त्वपूर्ण माना जाता है। सूर्योदय के डेढ़ घंटे पहले का मुहूर्त ब्राह्ममुहूर्त कहलाता है। सही-सही कहा जाए तो सूर्योदय के 2 मुहूर्त पहले या सूर्योदय के 4 घटिका पहले का मुहूर्त। एक मुहूर्त की अवधि 48 मिनट होती है। अतः सूर्योदय के 96 मिनट पूर्व का समय ब्राह्ममुहूर्त होता है।

दिन और रात का चक्र 24 घंटे में पूरा होता है। इन 24 घंटों में हर 48वें मिनट में मुहूर्त बदलता है। दिन और रात के इन 24 घंटों में कुल 30 मुहूर्त होते हैं और ये मुहूर्त बड़े महत्त्वपूर्ण होते हैं। विशेषकर तब, जब हम कोई नई शुरुआत करने जा रहे होते हैं।

इस समयावधि में कुछ कालखंड ऐसे होते हैं, जिनमें कार्य करने से अप्रत्याशिक सफलता मिलती है तो कुछ ऐसे होते हैं, जिनमें कार्य आरंभ होने से लाख कोशिशों के बाद भी बात नहीं बनती है। इन्हीं मुहूर्तों में एक मुहूर्त ऐसा भी होता है, जिसे भक्ति, ध्यान और ज्ञानार्जन के अनुसार बहुत शुभ माना जाता है। ऐसी मान्यता है कि यह देवताओं के भ्रमण का समय होता है।

इस मुहूर्त के दौरान वायु में अमृत की धार बहती है; जिसके दौरान बाहर व भीतर एक असीम शांति रहती है। इस मुहूर्त को कहते हैं—ब्राह्ममुहूर्त। ब्राह्ममुहूर्त को धार्मिक और वैज्ञानिक दोनों तरह से बहुत महत्त्व का बताया जाता है। धार्मिक रूप से जहाँ वेद-शास्त्रों तक में ब्राह्ममुहूर्त में उठने के लाभ बताए गए हैं तो वहीं विज्ञान भी इस समय को शारीरिक और बौद्धिक विकास के लिए बहुत अच्छा बताता है।

ऋग्वेद 1/125/1 में कहा गया है कि—

प्राता रत्नं प्रातरित्वा दधाति
तं चिकित्वान् प्रतिगृह्या नि धत्ते।
तेन प्रजां वर्धयमान आयू
रायस्पोषेण सचते सुवीरः॥

अर्थात सूर्योदय से पहले उठने से स्वास्थ्य अच्छा रहता है। इस कारण समझदार लोग इस समय को व्यर्थ नहीं गँवाते। जो सुबह जल्दी उठते हैं, वे स्वस्थ, सुखी, ताकतवर व दीर्घायु होते हैं। इसी तरह सामवेद मंत्र 1351 में भी लिखा है कि—

यदद्य सूर उदितेऽनागा मित्रो अर्यमा।
सुवाति सविता भगः॥

अर्थात सूर्योदय से पहले उठकर शौच व स्नानादि से निबटकर भगवान की पूजा-अर्चना करनी चाहिए। इस समय की शुद्ध और स्वच्छ हवा स्वास्थ्य, संपत्ति में वृद्धि करने वाली होती है।

इसी प्रकार अथर्ववेद में भी कहा गया है कि सूर्योदय के बाद भी जो नहीं उठते, उनका तेज खतम हो जाता है। भारतीय संस्कृति में ब्राह्ममुहूर्त में उठने की बड़ी महत्ता है। भगवान मनु ने कहा है—

ब्राह्मे मुहूर्ते बुध्येत, धर्मार्थौ चानुचिन्तयेत्।

अर्थात ब्राह्ममुहूर्त में प्रबुद्ध होकर धर्म और अर्थ का चिंतन करना चाहिए।

ब्राह्मे मुहूर्ते या निद्रा सा पुण्यक्षयकारिणी।

अर्थात ब्राह्ममुहूर्त की निद्रा पुण्यों का नाश करने वाली है।

आयुर्वेद में भी ब्राह्ममुहूर्त में जागरण से दिनचर्या के आरंभ का महत्त्व प्रतिपादित किया गया है।

वर्णं कीर्तिं मतिं लक्ष्मिं स्वास्थ्यमायुश्च विन्दति।
ब्राह्मे मुहूर्ते सञ्जाग्रच्छ्रियं वा पङ्कजं यथा॥

अर्थात ब्राह्ममुहूर्त में उठने वाला पुरुष सौंदर्य, लक्ष्मी, स्वास्थ्य, आयु आदि वस्तुओं को वैसे ही प्राप्त करता है, जैसे कमल प्राप्त करता है।

भोर का अर्थ सुबह-सवेरे से है। सवेरा (सूर्योदय से पहले का समय) भोजपुरी में बिहान को कहते हैं। भोर शब्द ब्राह्ममुहूर्त के काल को कहा जाता है। सूर्योदय से पहले जब वातावरण पूरी तरह शांत होता है; जब मुरगा बाँग देता है और पंछियों का कलरव गूँजता है—आम बोलचाल की भाषा में उसी समय को भोर या बिहान कहा जाता है।

दूसरे अर्थ में भोर को रात्रि प्रहर और उजाले के बीच का मिलन बिंदु भी कह सकते हैं। एक कवि कहता है कि 'उठ जाग मुसाफिर भोर भयो, अब रैन कहाँ जो सोवत है।' जीवन में सुखद और बेहतर नतीजों की प्राप्ति के लिए प्रतिदिन एक खास वक्त में जागना बहुत ही शुभ माना गया है। यह विशेष समय ही ब्राह्ममुहूर्त कहलाता है।

दरअसल ब्राह्ममुहूर्त का धार्मिक, आध्यात्मिक, मानसिक व शारीरिक सभी नजरिए से बहुत महत्त्व माना गया है। ऋषि-मुनियों, योगगुरुओं के अनुसार अगर कोई भी इनसान जीवन के हर क्षेत्र में मनोवांछित परिणाम चाहता है तो वह नित्य ब्राह्ममुहूर्त में जागना शुरू करे—उसे निश्चित ही बेहतर नतीजे प्राप्त होंगे।

बोलचाल की भाषा में ब्राह्ममुहूर्त का समय सुबह सूर्योदय से पहले चार-पाँच बजे के बीच का माना जाता है, किंतु हमारे धर्मशास्त्रों के अनुसार रात के आखिरी पहर का तीसरा हिस्सा या चार घड़ी तड़के तक ही ब्राह्ममुहूर्त होता है। ब्राह्ममुहूर्त में जागकर अपने इष्टदेव का ध्यान, पूजा, अध्ययन और किन्हीं भी शुभ कर्मों को करना बहुत ही शुभ होता है।

कहते हैं कि इस समय ईश्वर—ज्ञान, विवेक, सुख, शांति, सद्बुद्धि, नीरोग और सुंदर शरीर प्रदान करते हैं। इस समय भगवान की पूजा-अर्चना के बाद दही, घी, आईना, अपने माता-पिता, बच्चों और फूलमाला के दर्शन भी बहुत पुण्य प्रदान करते हैं। ब्राह्ममुहूर्त के समय संपूर्ण वातावरण में शांति और पवित्रता व्याप्त होती है।

माना जाता है कि इस समय आकाश में देवी-देवता भ्रमण करते हैं। इस समय सत्त्वगुण की प्रधानता रहती है और देवताओं के आवाहन और पूजन से विशेष लाभ की प्राप्ति होती है। इस समय सभी मंदिरों के दरवाजे खोल दिए जाते हैं, ताकि देवता अपना स्थान ग्रहण करें। इसी समय उनके शृंगार और पूजन का प्रावधान किया जाता है। ब्राह्ममुहूर्त में उठने से जातक को बल, बुद्धि, विद्या, सौंदर्य और स्वास्थ्य की प्राप्ति होती है।

आयुर्वेद के अनुसार यदि हम ब्राह्ममुहूर्त में उठकर टहलने जाते हैं तो हमारे शरीर में संजीवनी शक्ति का संचार होता है। इसका कारण यह है कि इस समय चलने वाली वायु पूरी तरह निर्मल और प्रदूषणरहित होती है। यह शुद्ध वायु हमारे शरीर के कण-कण को जीवंत करती है।

ब्राह्ममुहूर्त का समय अध्ययन के लिए भी अति उत्तम माना जाता है। विद्यार्थियों के पढ़ने के लिए भी यह समय अनुकूल माना जाता है। कारण यह है कि रात भर नींद और विश्राम से तरोताजा हुए मन-मस्तिष्क सुबह पूरी ऊर्जा के साथ पढ़ाई में लगते हैं। इसी के साथ हर तरफ फैली हुई शांति मन को भटकने भी नहीं देती और एकाग्रता से पढ़ाई करना संभव हो पाता है। पढ़ाई के लिए ब्राह्ममुहूर्त से बेहतर कोई दूसरा समय हो ही नहीं सकता।

इस समय वातावरण की शांति, तन-मन की ताजगी, शांत मस्तिष्क और ताजी हवा सब मिलकर विद्यार्थी के लिए एकाग्रता से पढ़ाई करना संभव बनाते हैं। इस समय याद किया गया पाठ मस्तिष्क में अंकित हो जाता है और लंबे समय तक याद रहता है।

ब्राह्ममुहूर्त जीवन के हर पहलू पर अपना सकारात्मक प्रभाव डालता है। इस समय किया गया हर सही कार्य कई गुना फल देता है। वैसे तो जीवन के कर्म के प्रकारों का कोई अंत नहीं है, पर कुछ काम ऐसे हैं, जो ब्राह्ममुहूर्त में किए जाएँ तो दिन के किसी भी समय की अपेक्षा अधिक फल देते हैं।

ध्यान के लिए भी सबसे सटीक समय ब्राह्ममुहूर्त का होता है। इस समय वातावरण शांत होता है, वायु निर्मल और शुद्ध होती है तथा मन को भटकाने के अवरोध नहीं होते हैं। इस समय पूर्ण एकाग्रता से किया गया ध्यान आत्मिक शुद्धि में सहायक होता है, जिसका सीधा प्रभाव साधक के शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य पर तुरंत ही दिखाई देता है।

ब्राह्ममुहूर्त का समय पूजा-पाठ, प्रार्थना के लिए सर्वाधिक अनुकूल माना जाता है। इस समय देवी-देवता स्वयं भ्रमण करते हैं, तो वे हमारे द्वारा किया गया आह्वान स्वयं ग्रहण कर सहस्र गुना फल देते हैं। ब्राह्ममुहूर्त में हम वैदिक रीति से संध्यावंदन भी कर सकते हैं। इस समय विधि-विधान से किया गया संध्यावंदन सहस्र गुना फलदाई होता है। यदि हमारी धर्म में रुचि न भी हो, तो भी हमें बेहतर स्वास्थ्य के लिए ब्राह्ममुहूर्त में टहलना चाहिए।

किसी भी दवा के मुकाबले यह भ्रमण हमारे जीवन में आई हर स्वास्थ्य समस्या का अंत सकारात्मक प्रभाव से करेगा। ब्राह्ममुहूर्त में किसी भी तरह की नकारात्मकता को जीवन में प्रवेश नहीं करने देना चाहिए।

इस समय किसी भी प्रकार के वार्त्तालाप, बहस, तनाव, झगड़े से बचना चाहिए। इस समय भोजन, यात्रा, संभोग, मादक द्रव्यों के सेवन आदि को भी निषिद्ध माना गया है। ब्राह्ममुहूर्त में शांति का साम्राज्य रहता है तो किसी भी हालत में उसे खंडित न करें।

ब्राह्ममुहूर्त में ऐसा कोई काम न करें, जिससे शोर-शराबा हो; क्योंकि वातावरण की शांति ही इस समय की विशेषता है और विशेष फलदायी भी है। ब्राह्ममुहूर्त में वेदमंत्रों के उच्चारण से वातावरण बहुत शुद्ध हो जाता है और परिणामस्वरूप मन को असीम शांति एवं पुण्य की प्राप्ति होती है।

वाल्मीकि रामायण के अनुसार भगवान श्री हनुमान माता सीता को ढूँढ़ते हुए ब्राह्ममुहूर्त में ही अशोक वाटिका पहुँचे थे, जहाँ पर उन्होंने वेदों

के मंत्र उच्चारण की आवाज सुनी थी और उनका मन प्रफुल्लित हो गया था। अच्छी सेहत, मानसिक एवं शारीरिक दृढ़ता पाने के लिए भी ब्राह्ममुहूर्त सबसे उपयुक्त समय है; क्योंकि इस समय वातावरण में प्राणवायु अर्थात ऑक्सीजन की मात्रा अधिक होती है।

इससे व्यक्ति का पूरा शरीर शुद्धता और ऊर्जा से भर जाता है। उसका दिमाग भी शांत और स्थिर रहता है। व्यक्ति को न केवल निरोगी शरीर प्राप्त होता है, वरन उसकी आयु में भी वृद्धि होती है। इस तरह युवा पीढ़ी आलस्य के कारण देर तक सोने के बजाय इस खास वक्त का फायदा उठाकर बेहतर सेहत, सुख, शांति और नतीजों को पा सकती है।

वैज्ञानिक शोध अध्ययन बताते हैं कि ब्राह्ममुहूर्त के समय वायुमंडल प्रदूषणरहित होता है। इस समय वायुमंडल में प्राणवायु यानी ऑक्सीजन की मात्रा सबसे अधिक होती है, जो फेफड़ों की शुद्धि और मस्तिष्क को ऊर्जा देने के लिए बहुत जरूरी होती है। वहीं जब हम इस समय नींद से जागते हैं तो मस्तिष्क में एक स्फूर्ति व ताजगी होती है। इसका असर हमारे संपूर्ण स्वास्थ्य पर दिखाई देता है।

शास्त्रों में सुबह के सुकून भरे वक्त में जीवन को साधने के लिए ही स्नान का बड़ा महत्त्व बताया गया है। यहाँ तक कि रोग या किसी लाचारी में भी कई विकल्पों के साथ स्नान करना तन ही नहीं, मन के कलहरूपी ताप को भी कम करने वाला बताया गया है। इस तरह ब्राह्ममुहूर्त का समय अनेकों लाभों को प्रदान करने वाला है। ❑

पतिव्रता साधिका कौशिकी का विवाह रुग्ण पति से हुआ, परंतु इससे उसे जरा भी शोक नहीं होता था, वरन उसे लगता था कि ईश्वर ने उसे सेवावृत्ति के विकास का अवसर प्रदान किया है। एक बार वह अँधेरी रात्रि में अपने पति को पीठ पर लादकर ले जा रही थी। रास्ते में अंधकार के कारण पति का पैर तपस्यारत माण्डव्य ऋषि से लग गया। सामान्य भूल को ऋषि ने जान-बूझकर की गई उद्दंडता समझकर शाप दे दिया—"जिस व्यक्ति ने यह धृष्टता की है, वह सूर्योदय होते ही मृत्यु को प्राप्त होगा।" कौशिकी ने यह जानकर स्पष्टीकरण देने का प्रयास किया, किंतु उससे कोई लाभ न हुआ। अंततः कौशिकी बोली—"मैं निरपराध वैधव्य दंड नहीं स्वीकारूँगी। यदि सूर्योदय के साथ पति की मृत्यु तय है तो वह सूर्योदय ही नहीं होगा।" सूर्यदेव पतिव्रता की शक्ति की अवहेलना नहीं कर सकते थे। सूर्योदय न होने पर जगत् में हाहाकार मच गया। ऋषि माण्डव्य को अपनी भूल का भान हुआ, पर अपना शाप वापस लेने की सामर्थ्य उनमें नहीं थी। ऐसी परिस्थिति में सती अनसूया वहाँ प्रकट हुईं और बोलीं—"कौशिकी बहन! सूर्योदय होने दो। तुम्हारे पति को मैं पुनः जीवित कर दूँगी।" ऐसा ही हुआ। दोनों पतिव्रता देवियों के तेज का प्रमाण पाकर संसार धन्य-धन्य कर उठा।

हमने आँगन नहीं बुहारा, कैसे आएँगे भगवान?

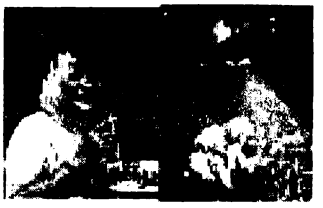

प्रभातकाल की वेला थी। सूर्यदेव अपनी स्वर्णमयी आभा से पूरे जगत् के साथ भीलों के उस गाँव को भी आलोकित कर रहे थे, जहाँ आज प्रभातकाल से ही लोगों में विशेष चहल-पहल थी। लोग समूह में इधर-उधर आ-जा रहे थे, गा रहे थे, नाच रहे थे और उत्सव मना रहे थे। उस उत्सव में आज बड़ी संख्या में पशुओं को बाँधकर एक जगह बलि देने को रखा गया था।

दरअसल किसी कन्या की शादी के अवसर पर भील समुदाय में पशु-वध की विशेष परंपरा सदियों से चली आ रही थी। इसलिए छोटे-बड़े सभी लोग अपनी हैसियत के अनुसार अपनी कन्या की शादी में पशु-वध की परंपरा को निभाते आ रहे थे। पशुओं के मांस को शादी में विशेष व्यंजन के रूप में परोसा जाता था और फिर आज तो किसी साधारण भील की नहीं, बल्कि भील जनजाति के मुखिया की बेटी की शादी थी, इसलिए यह समारोह और भी व्यापक पैमाने पर प्रारंभ हो चुका था।

विशेष व्यंजन के रूप में पशुओं के मांस को पाने की लोगों में होड़-सी मची थी। उनमें पशुओं के वध को भी देखने की होड़-सी मची हुई थी। उनके उत्साह व जश्न की कोई सीमा न थी, पर दूसरी ओर वध के लिए बाँधकर रखे गए पशुओं को भी मानो स्वयं के वध किए जाने की आहट होने लगी थी। इसलिए उनके बीच दु:खद भावना व्याप्त थी।

उनका वध करने के लिए उनके पास रखे गए तेज धार वाले बड़े-बड़े हथियार उन्हें अगले ही पल वध किए जाने के संकेत दे रहे थे। उन निरीह पशुओं की पीड़ा को जश्न में डूबे लोग भला कैसे महसूस कर सकते थे? उन असहाय व निरीह पशुओं की पीड़ा को यदि कोई महसूस कर रहा था तो स्वयं वह भील युवती थी, जिसकी शादी के जश्न के नाम पर यह सब हो रहा था और जो अभी अपने घर के झरोखे से वध के लिए लाए गए उन निरीह पशुओं को देखकर द्रवित थी, मर्माहत थी।

वह सोच रही थी कि एक तरफ उत्सव का वातावरण है तो दूसरी ओर शोक का वातावरण है। भला यह कैसी विडंबना है? कैसी परंपरा है यह? हे प्रभु! आप इन निरीह पशुओं की रक्षा करें और हाँ! यदि विवाह में इन पशुओं का वध करना एक अनिवार्य परंपरा है तो मुझे ऐसी शादी करनी ही नहीं है।

वास्तव में वहाँ वध के लिए रखे गए निरीह पशुओं की नियति को जानकर उस लड़की का हृदय भाव-संवेदना से भर उठा। उसके मन में सांसारिक जीवन से ही वैराग्य हो गया। वह सोचने लगी कि मैं ऐसी परंपरा का हिस्सा नहीं हो सकती। मैं जब शादी ही नहीं करूँगी तो फिर इस परंपरा के निर्वाह का प्रश्न ही कहाँ होगा?

ऐसा सोचती हुई शादी के विशेष परिधान में सजी-सँवरी वह युवती अपने घर से बाहर निकल उस समारोह में पहुँच गई, जहाँ सभी नाच-गा रहे थे, जहाँ पशुओं के वध को रखे हथियारों की धार को और भी तेज किया जा रहा था। उस युवती ने अपने पिता व सर्वसमुदाय के समक्ष ऐसी परंपरा का हिस्सा नहीं बनने के साथ-साथ शादी करने से

भी इनकार कर दिया। वह गृह-त्यागकर जंगल की ओर प्रस्थान कर गई।

कौन थी यह युवती, जो भाव-संवेदना से भरी थी और मूढ़ परंपराओं के खिलाफ थी? वह कोई और नहीं, बल्कि भील जनजाति के मुखिया की बेटी शबरी थी, जो आगे चलकर अपनी भाव-संवेदना, गुरु सेवा व निश्छल भक्ति के कारण भगवान का साक्षात्कार करने में सफल हो सकी।

वह भीलनी युवती गृहत्याग के पश्चात जंगल में रहकर तप-साधना करने वाले ऋषियों की सेवा करने लगी। एक दिन वह मतंग वन में घूमती हुई मतंग मुनि के सुंदर आश्रम में जा पहुँची। जाति के आधार पर तथाकथित धार्मिक समाज से उपेक्षित व ठुकराई हुई शबरी ने मतंग मुनि के चरणों में सिर रख दिया और उनसे शरण माँगी।

शबरी की आँखों से बहती हुई श्रद्धा व भक्ति की पवित्र आँसुओं की धार को देखकर ब्रह्मज्ञानी मतंग मुनि को यह समझते देर नहीं लगी कि यह कोई साधारण युवती नहीं। यह तो श्रद्धा व भक्ति की सजीव प्रतिमूर्ति है। उन्होंने यह देख लिया कि इस स्त्री के हृदय में प्रभुभक्ति सागर-सी लहरा रही है, उमड़ रही है, घुमड़ रही है और प्रेम के बादलों से भरा उसका हृदयाकाश बरसने को सदैव आकुल है, व्याकुल है।

ब्रह्मज्ञानी मुनि ऐसी दिव्य आत्मा को शरण देने से भला कैसे इनकार कर सकते थे? सो ब्रह्मज्ञानी मुनि ने उसे शरण दी और भक्ति का ज्ञान दिया। भगवान के चरणों में उसके निश्छल प्रेम को देखकर उन्होंने उसे गुरुदीक्षा दी और नित्य-निरंतर भगवद्उपासना करते रहने का आदेश भी दिया।

अंत समय में परमधाम जाने से पहले उन्होंने शबरी को आदेश दिया—''तुम यहीं रहना। यहाँ रहकर भगवान की उपासना करना। एक दिन भगवान श्रीराम व लक्ष्मण यहाँ अवश्य पधारेंगे और तुम्हें उनका साक्षात् दर्शन प्राप्त हो सकेगा। श्रीराम साक्षात् परब्रह्म हैं, उनका दर्शन पाकर तुम्हारा जीवन सफल हो जाएगा।''

इस प्रकार सद्गुरु ने शबरी के हृदय में पूर्व से जल रही भक्ति की लौ को अपने ज्ञान से और भी दीप्त कर दिया, प्रदीप्त कर दिया। अपनी निरंतर उपासना से, साधना से, आराधना से वह अपने हृदय में प्रदीप्त भक्ति की अग्नि में श्रद्धा, प्रेम, सेवा, संचय की नित्य-निरंतर आहुतियाँ देती रही, उसे प्रदीप्त किए रही, उसे धधकाती रही, उसे बनाए रही। उस अग्नि में उसके पूर्व व वर्तमान जन्मों के कर्म-संस्कार भस्मीभूत होते रहे और शबरी का व्यक्तित्व कुंदन बन चमकता रहा, निखरता रहा, दमकता रहा। उसकी आत्मा पूर्णिमा के चाँद की तरह चमकती रही, दमकती रही।

वह अपने गुरु के आदेशानुसार प्रभु श्रीराम के आगमन की प्रतीक्षा करती रही। पता नहीं प्रभु श्रीराम कब पधार जाएँ? इस सोच के साथ वह सदा सजग रहती, तैयार रहती, प्रभुदर्शन को तत्पर रहती। भक्त को सदा सजग व तत्पर रहना ही पड़ता है। वह नित्य आश्रम के प्रवेशद्वार तक के मार्ग को अपने आँचल से बुहारती और उस मार्ग पर पुष्प बिछाती। ऐसा वह प्रतिदिन करती।

ऐसा इसलिए; क्योंकि उसे अपने गुरु के वचनों पर दृढ़ विश्वास था। यदि गुरु ने कहा है कि भगवान यहाँ आएँगे और दर्शन देंगे तो ऐसा होगा ही। इसमें उसे कोई संदेह नहीं, उसे कोई भ्रम था ही नहीं। उसकी श्रद्धा व भक्ति भी सच्ची थी, पक्की थी, दृढ़ थी; इसलिए उसे भरोसा था अपने गुरु पर, अपने प्रभु पर। अंततः शबरी की साधना सफल हुई और शबरी ने भगवान राम को लक्ष्मण सहित जंगल की ओर से अपनी कुटिया की ओर

आते देखा। उस मनोहर दृश्य का मानसकार ने भी क्या खूब वर्णन किया है—

सरसिज लोचन बाहु बिसाला।
जटा मुकुट सिर उर बनमाला॥
स्याम गौर सुंदर दोउ भाई।
सबरी परी चरन लपटाई॥
प्रेम मगन मुख बचन न आवा।
पुनि पुनि पद सरोज सिर नावा॥
सादर जल लै चरन पखारे।
पुनि सुंदर आसन बैठारे॥
कंद मूल फल सुरस अति दिए राम कहुँ आनि।
प्रेम सहित प्रभु खाए बारंबार बखानि॥
पानि जोरि आगें भइ ठाढ़ी।
प्रभुहि बिलोकि प्रीति अति बाढ़ी॥
केहि बिधि अस्तुति करौं तुम्हारी।
अधम जाति मैं जड़मति भारी॥
कह रघुपति सुनु भामिनि बाता।
मानउँ एक भगति कर नाता॥
जाति पाँति कुल धर्म बड़ाई।
धन बल परिजन गुन चतुराई॥
भगति हीन नर सोहइ कैसा।
बिनु जल बारिद देखिअ जैसा॥

अर्थात कमल-सदृश नेत्र और विशाल भुजा वाले, सिर पर जटाओं का मुकुट और हृदय पर वनमाला धारण किए हुए दोनों भाइयों के चरणों में शबरी लिपट पड़ी। वह प्रेम में मग्न हो गई, मुख से वचन भी नहीं निकल रहा था। बार-बार प्रभु के चरणकमलों में वह सिर नवा रही है। उसने जल लेकर आदरपूर्वक दोनों भाइयों के चरण धोए और फिर उन्हें सुंदर आसनों पर बैठाया। उसने अत्यंत रसीले और स्वादिष्ट कंद, मूल और फल लाकर श्रीराम जी को दिए। प्रभु भी उन्हें प्रशंसा करते हुए प्रेमसहित खा रहे हैं। फिर शबरी प्रभु के समक्ष हाथ जोड़े खड़ी हो गई।

प्रभु को देखकर उसके हृदय में प्रेम उमड़ता ही जा रहा था। वह बोली—"हे प्रभु! मैं किस प्रकार आपकी स्तुति करूँ? मैं आपकी स्तुति करना भी तो नहीं जानती। फिर मैं अशिक्षित और अत्यंत मूढ़ भी तो हूँ। इसलिए हे नाथ! मैं आपकी पूजा-उपासना भी तो नहीं करना जानती।"

शबरी की निश्छल भक्ति व प्रेमभरी बातें सुनकर प्रभु बोले—"हे भामिनी! मेरी बात सुन। मैं तो केवल एक भक्ति का ही संबंध मानता हूँ; क्योंकि जात-पाँत, कुल-धर्म, बड़ाई, धन, बल, कुटुंब, गुण और चतुरता—इन सबके होने पर भी भक्ति से रहित मनुष्य वैसा ही लगता है, जैसे जलहीन बादल शोभाहीन दिखाई पड़ता है।" तत्पश्चात शबरी को नवधा भक्ति का उपदेश देते हुए प्रभु कहते हैं—

नवधा भगति कहउँ तोहि पाहीं।
सावधान सुनु धरु मन माहीं॥
प्रथम भगति संतन्ह कर संगा।
दूसरि रति मम कथा प्रसंगा॥
गुर पद पंकज सेवा तीसरि भगति अमान।
चौथि भगति मम गुन गन करइ कपट तजि गान॥
मंत्र जाप मम दृढ़ बिस्वासा।
पंचम भजन सो बेद प्रकासा॥
छठ दम सील बिरति बहु करमा।
निरत निरंतर सज्जन धरमा॥
सातवँ सम मोहि मय जग देखा।
मोतें संत अधिक करि लेखा॥
आठवँ जथालाभ संतोषा।
सपनेहुँ नहिं देखइ परदोषा॥
नवम सरल सब सन छलहीना।
मम भरोस हियँ हरष न दीना॥

नव महुँ एकउ जिन्ह कें होई।
नारि पुरुष सचराचर कोई॥
सोइ अतिसय प्रिय भामिनि मोरें।
सकल प्रकार भगति दृढ़ तोरें॥
जोगि बृंद दुरलभ गति जोई।
तो कहुँ आजु सुलभ भइ सोई॥
मम दरसन फल परम अनूपा।
जीव पाव निज सहज सरूपा॥
जनकसुता कह सुधि भामिनी।
जानहि कहु करिबरगामिनी॥

अर्थात भगवान श्रीराम कहते हैं कि हे शबरी! मैं तुझसे अब अपनी नवधा भक्ति कहता हूँ। तू उसे सावधान होकर सुन और उसे मन में धारण कर। पहली भक्ति है संतों का सत्संग। दूसरी भक्ति है मेरे कथा-प्रसंग में प्रेम। तीसरी भक्ति है अभिमानरहित होकर गुरु के चरणकमलों की सेवा और चौथी भक्ति यह है कि कपट छोड़कर मेरे गुण समूहों का गान करे। मेरे (राम) मंत्र का जाप और मुझमें दृढ़विश्वास यह पाँचवीं भक्ति है, जो वेदों में प्रसिद्ध है।

छठी भक्ति है इंद्रियों का निग्रह, शील (अच्छा स्वभाव या चरित्र), बाह्य कार्यों से वैराग्य और निरंतर संत पुरुषों के धर्म (आचरण) में लगे रहना। सातवीं भक्ति है जगत् भर को समभाव से मुझमें ओत-प्रोत (राममय) देखना और संतों को मुझसे भी अधिक करके मानना। आठवीं भक्ति है जो कुछ मिल जाए, उसी में संतोष करना और स्वप्न में भी पराए दोषों को न देखना।

नवीं भक्ति है सरलता और सबके साथ कपटरहित बरताव करना, हृदय में मेरा भरोसा रखना और हर्ष-विषाद आदि किसी भी अवस्था में समान भाव की स्थिति में होना। इन नौ प्रकार की भक्ति में जिनके पास एक भी होती है, वह स्त्री-पुरुष, जड़-चेतन कोई भी हो, हे भामिनि! मुझे वही अत्यंत प्रिय है, फिर तुझमें तो सभी प्रकार की भक्ति दृढ़ है। अतएव जो गति योगियों को भी दुर्लभ है, वही आज तेरे लिए सुलभ हो गई है। मेरे दर्शन (भगवद्दर्शन) का परम अनुपम फल यह है कि जीव अपने सहज स्वरूप को प्राप्त हो जाता है।

इस प्रकार शबरी को नवधा भक्ति का अमृत उपदेश देने के पश्चात भगवान राम शबरी जैसे निश्छल भक्त को अपने कार्य (भगवत्कार्य) में सहभागी होने का श्रेय देने की दृष्टि से कहते हैं कि हे भामिनि! अब यदि तू जानकी की कोई खबर जानती हो तो बता।

यहाँ युगऋषि परमपूज्य गुरुदेव श्रीराम शर्मा आचार्य जी के अनुसार साधकों के लिए यह समझना आवश्यक है कि प्रभु के अवतार के तीन प्रमुख प्रयोजन होते हैं। पहला धर्म की स्थापना, दूसरा अधर्म का नाश और तीसरा सच्चे भक्तों, शिष्यों व साधकों को अपने कार्य में सहभागी होने का श्रेय व सौभाग्य प्रदान करना। भगवान राम शबरी से जानकी के विषय में कुछ बताने को कहकर उसे श्रेय-सौभाग्य ही तो दे रहे हैं।

भक्तिमति शबरी भी यह बखूबी समझ रही है, इसलिए वह सोच रही है कि भक्तवत्सल भगवान स्वयं सर्वव्यापी हैं, सर्वज्ञ हैं, वे सब कुछ तो जानते हैं, फिर मुझ जैसी साधारण स्त्री को, अपने भक्त को भगवत्कार्य में सहभागी होने का श्रेय व सौभाग्य प्रदान करने को ही मुझसे जानकी के विषय में पूछ रहे हैं।

अस्तु भक्तिमति शबरी ने कहा कि हे प्रभु! आप सर्वज्ञ होते हुए भी, सर्वव्यापक होते हुए भी जानकी के विषय में मुझसे पूछते हैं। हे प्रभु! आप पंपा नामक सरोवर को जाइए, वहाँ आपकी सुग्रीव

से मित्रता होगी। हे देव! वह आपको सब हाल बताएगा। इस प्रकार बार-बार प्रभु के चरणों में सिर नवाकर प्रेमसहित उसने सारी बातें कह सुनाईं।

अंत में भगवान की मधुर-मनोहर छवि का, मुख का दर्शन कर, उनके चरणकमलों का अपने हृदय में ध्यान करते हुए योगाग्नि से अपनी देह का त्याग कर वह उस दुर्लभ हरिपद में लीन हो गई, जहाँ पहुँचकर मनुष्य का फिर से मृत्युलोक में लौटना नहीं होता अर्थात वह जन्म-मरण के बंधन से सदा के लिए मुक्त होकर परमात्मा में ही लीन हो जाता है, विलीन हो जाता है।

इसलिए गोस्वामी तुलसीदास साधक, शिष्य, भक्त व मनुष्य मात्र के कल्याण की भावना से कह रहे हैं कि, हे मनुष्यो! अनेकों प्रकार के कर्म, अधर्म और बहुत से मत-मतांतर, वाद-विवाद, तर्क-कुतर्क, ये सब शोकप्रद हैं, इसलिए इनका त्याग कर दो और विश्वास करके श्रीराम जी के चरणों में प्रेम करो। भला ऐसे प्रभु को भूलकर कोई सुख प्राप्त कर सकता है? हरगिज नहीं, कदापि नहीं। इसलिए सब कुछ छोड़कर प्रभु के चरणों में मन लगाओ।

यदि ऐसा कर सके तो शबरी की ही तरह कृपालु भगवान तेरा भी उद्धार अवश्य करेंगे। इसमें जरा भी संदेह नहीं। वास्तव में उन सभी साधकों, शिष्यों, भक्तों व सामान्य जनों के लिए जो सचमुच ही भगवद्दर्शन, भगवत्प्राप्ति के अनुरागी हैं, अभिलाषी हैं, उनके लिए शबरी के इस कथा-प्रसंग में दुर्लभ व दिव्य प्रेरणाएँ हैं। उन प्रेरणाओं को धारण कर कोई भी साधक अपनी साधना की गति को तीव्र कर सकता है और अपनी मंजिल को प्राप्त कर सकता है।

अस्तु आवश्यकता इस बात की है कि शबरी की ही तरह साधक की साधना, भक्त की भक्ति उसके जीवन से, व्यवहार से, आचरण से और हर कर्म से अभिव्यक्त होते रहनी चाहिए। शबरी की ही तरह साधक को मूढ़ मान्यताओं व परंपराओं का प्रतिकार करना चाहिए।

साधक का अनीति, अन्याय, मूढ़मान्यताओं व परंपराओं के समक्ष नतमस्तक होना या मौन बने रहना भी तो उन्हें बढ़ावा देना ही है। जैसा कि युगऋषि परमपूज्य गुरुदेव ने कहा है—'**अनाचार बढ़ता है कब, सदाचार चुप रहता जब।**' अस्तु अनीति का खंडन करने को साधक में शौर्य, साहस व पौरुष होना ही चाहिए। वह साधक भी क्या जिसमें शौर्य न हो, साहस न हो और पौरुष न हो।

आज समाज में दहेजप्रथा, मृतकभोज, बेटे-बेटी में अंतर, जातिप्रथा, पशुबलि, क्षेत्रवाद, भाषावाद, लिंगभेद, संप्रदायवाद आदि कई मूढ़ मान्यताएँ व प्रवृत्तियाँ हैं, जिनका प्रतिकार साधकों को करना ही चाहिए।

साधक को शबरी की तरह ही साधना के साथ-साथ सेवा में भी तत्पर रहना चाहिए। आपदा निवारण का कार्य हो या दुष्प्रवृत्तियों के उन्मूलन संबंधी कोई अभियान—उसमें साधकों की भागीदारी होनी ही चाहिए।

शबरी रोज मार्ग की सफाई करती है और प्रभु के आगमन की तैयारी करती है। यह पूरा विश्व-ब्रह्मांड भगवान का ही तो आँगन है, परिसर है। अस्तु हम जहाँ भी हों, वहाँ के आस-पास का परिसर स्वच्छ होना ही चाहिए; क्योंकि स्वच्छता में ही तो भगवान का वास है, पर यह स्वच्छता बाह्य के साथ-साथ आंतरिक भी होनी चाहिए। हमारी आत्मा ही तो वह आँगन है, जिसमें प्रभु का आगमन होता है।

हमें अपने आत्मांगन में रोज भक्ति की झाड़ू लगाते रहना चाहिए। आत्मा की पवित्रता के लिए

हमें सदैव तत्पर रहना चाहिए। शुभ व निष्काम कर्म से, भक्ति से, ज्ञान से ही आत्मा पवित्र होती है और तभी उसमें प्रभु का आगमन होता है। शबरी प्रभु को खट्टे नहीं, मीठे फल समर्पित करती है। इसका आशय यही है कि हम खट्टे अर्थात बुरे कर्म से दूर रहें और शुभ कर्म करें और शुभ कर्मों के मधुर फल को प्रभु को समर्पित करते रहें।

शबरी प्रभु के कार्य में भी सहभागी बनती है। विश्व-ब्रह्मांड की सेवा कर, गुरु के द्वारा विश्वहित में चलाए जा रहे अभियान में सहभागी बनकर हम भी यह सौभाग्य प्राप्त कर सकते हैं। शबरी भगवान के आगमन की सदैव तैयारी करती रही, मार्ग बुहारती रही और इसको लेकर लोग उसका उपहास उड़ाते रहे, मजाक बनाते रहे, पर 'लोग क्या कहते हैं, उसने कभी इसकी परवाह नहीं की, बल्कि मेरे गुरु ने मुझे क्या कहा है, इसका ही सदैव ख्याल रखा।'

सच्चे साधक को भी अपने गुरु पर, भगवान पर, मंत्र पर दृढ़ विश्वास होना चाहिए। शबरी की साधना में नियमितता है, धैर्य है, संयम है, गति है, तीव्रता है। हमारी साधना में भी यह होना आवश्यक है।

शबरी नवधा भक्ति में निष्णात है। हमें भी इसमें निष्णात होना ही होगा। यदि हम पूरी श्रद्धा, निष्ठा, ईमानदारी, धैर्य, संयम के साथ दीर्घकाल तक नियमित रूप से ऐसी साधना करते रहें तो हमारे जीवन में भी राम का आगमन, भगवान का आगमन सुनिश्चित है और भगवान का वह आगमन स्थूल अथवा सूक्ष्म किसी भी रूप में हो सकता है। वे ज्योति रूप में हमें दर्शन दे सकते हैं। वे हमारे अंदर प्रेम, ज्ञान व भाव-संवेदना के रूप में भी अवतरित हो सकते हैं।

वे हमारी आत्मा में आनंद के रूप में प्रकट हो सकते हैं। वे हमें दीन-दुखियों के वेश में भी मिल सकते हैं। सत्-चित्-आनंद रूप प्रभु हमारे अंदर प्रकट हो सकते हैं। अस्तु हम अपनी आत्मा के आँगन में नित्य झाड़ू लगाया करें, सफाई किया करें; क्योंकि यदि हमने आँगन नहीं बुहारा तो फिर कैसे आएँगे भगवान? ❑

कश्मीर से लेकर पाटलिपुत्र तक सभी उग्रश्रवा के नाम से काँपते थे। वह एक दुर्दांत, आततायी के नाम से कुख्यात था और अनेकों के प्राण हरण कर चुका था। एक दिन महर्षि व्यास अपने शिष्यों के साथ उसके नगर में पधारे। उग्रश्रवा उन्हें प्रणाम करने पहुँचा और उनसे उनकी सेवा करने का आग्रह करने लगा। महर्षि ने उत्तर दिया—''पुत्र! यदि तुम कुछ देना ही चाहते हो, अपनी नृशंसता का दान दो और यदि यह करने में असमर्थ हो तो पहले मेरा वध करो।'' महर्षि के वचनों को अस्वीकार करना उग्रश्रवा के लिए संभव न था सो उसने दस्यु पथ तुरंत त्याग दिया, किंतु उसके अंदर की हिंसा मात्र इतने से तो शांत न हो सकती थी। उसने शांति पाने का उपाय महर्षि व्यास से पूछा तो वे बोले—''वत्स! अब तक तुमने मात्र दूसरों से छीना है, अब तुम अपने हृदय को इतना विशाल बनाओ कि तुम दूसरों के हृदय में शांति पहुँचा सको। जीवन का सच्चा आनंद दूसरों से उनका सुख छीनने में नहीं, बल्कि उनका दुःख बँटाने में है।'' इतना सुनते ही उग्रश्रवा का हृदय परिवर्तन हो गया। उसने धर्म और सत्य का पथ अपना लिया और वही उग्रश्रवा आगे चलकर ऋषि सूत के नाम से विख्यात हुआ। उसके पुराण-प्रवचनों को सुनकर अनेकों ने श्रेष्ठ जीवन का चयन किया।

प्रतिभावान आगे आएँ

मानवीय जीवन ईश्वरप्रदत्त प्रतिभाओं से युक्त है। प्रतिभाओं को एक तरह से ईश्वरीय अनुदान ही मानना चाहिए और प्रतिभासंपन्नों को अपने मन में यह भाव रखना चाहिए कि ये प्रतिभाएँ हमें लोकोत्थान जैसे पुनीत दायित्व के निर्वहन के लिए दैवी चेतना द्वारा प्रदान की गई हैं।

यह भाव रखने पर प्रतिभासंपन्नों को स्वयं की विशिष्टता के बोध के साथ प्रतिभा के साथ जुड़े विशिष्ट दायित्वों का बोध भी अनवरत बना रहेगा। दायित्व का बोध रहे तो ईश्वरीय अनुदान के रूप में प्राप्त प्रतिभा का उपयोग आत्मकल्याण एवं जनकल्याण के लिए ही होता है—क्षुद्र कामनाओं एवं तृष्णाओं की प्रतिपूर्ति में नहीं।

प्रतिभाओं के क्षेत्र भी अनेकों हैं। साहित्य, संगीत, कला से लेकर संभाषण, नृत्य, राजनीति एवं अध्यात्म—सभी क्षेत्रों में प्रतिभावान ही प्रतिष्ठित होते देखे जाते हैं। धनवानों और बलवानों की भी गिनती एक तरह से विभूतिसंपन्न प्रतिभावानों में ही होती है। क्षेत्र कोई भी हो, प्रतिभावानों को पथ सदा धर्म का लेना चाहिए, ताकि सत्य एवं सदाचार की गरिमा सुरक्षित रह सके। धनुर्धर के रूप में कर्ण, बलवान के रूप में बालि, संहिताकार के रूप में रावण और योजनाकार के रूप में शकुनि कम प्रतिभासंपन्न नहीं थे, परंतु अधर्म के पथ का चयन करने के कारण उनकी जो परिणति हुई—वो जगविख्यात है।

आज का समय भी प्रतिभावानों को पुकार लगाता समय है। आज भी मानवता की रक्षा के लिए, संस्कृति के जागरण के लिए एवं राष्ट्र के नवनिर्माण के लिए महाकाल ने पुनः भावनाशील प्रतिभावानों को आवाज लगाई है। आवश्यकता है कि वे युग की माँग और समय की पुकार को सुनें और आगे आएँ।

नए युग में प्रत्येक प्रतिभा को समाज एवं प्रवृत्ति की धरोहर के रूप में देखा जाएगा और यह समझा जाएगा कि जिसे यह ईश्वरीय अनुदान प्रदान किया गया है वह उसका सदुपयोग करे। आवश्यक है कि न केवल प्रतिभासंपन्न जागें, वरन वे यह भी सुनिश्चित करें कि प्रतिभा धर्मनिष्ठ एवं सत्पथगामी भी हो। ❑

चंदा वृद्धि की सूचना

हमारे अखण्ड ज्योति पत्रिका के परिजन-पाठकों को हमें बड़े भारी मन से सूचित करना पड़ रहा है कि कागज के मूल्यों एवं छपाई के अन्य साधनों के मूल्यों में बेतहाशा वृद्धि होने के कारणों से अखण्ड ज्योति का चंदा (सदस्यता शुल्क) जनवरी—2023 से बढ़ाना पड़ रहा है। बढ़ी हुई दरें इस प्रकार से हैं—

1. वार्षिक चंदा (भारत में)	**300 रुपये**
2. आजीवन 20वर्षीय चंदा (भारत में)	**6000 रुपये**
3. वार्षिक चंदा (विदेश में)	**2800 रुपये**
अँगरेजी द्विमासिक अखण्ड ज्योति पत्रिका की बढ़ी हुई दरें—	
1. वार्षिक चंदा (भारत में)	**170 रुपये**
2. वार्षिक चंदा (विदेश में)	**1500 रुपये**

महाकाल की अभ्यर्थना का केंद्र

भारतवर्ष की पुण्य-पावन धरा पर ऐसे कई नगर-शहर हैं जो परम दिव्य, पवित्र, तपोमयी देवभूमि के रूप में प्रतिष्ठित हैं। इन्हीं में से एक अलौकिक नगरी है—उज्जैयिनी। भारतीय धर्म, संस्कृति, अध्यात्म, तप, योग, ज्ञान-विज्ञान, शिक्षा और व्यापार की दृष्टि से मध्य भारत का यह प्राचीनतम शहर अत्यंत समृद्ध, वैभवशाली एवं गौरवशाली रहा है।

भारतभूमि की यही एकमात्र ऐसी नगरी है, जहाँ के अधिपति एवं राजा स्वयं महाकाल हैं। वेद, पुराण आदि शास्त्रों में मोक्षदायिनी पुरियों—अयोध्या, काशी, मथुरा आदि सात पुरियों में अवंतिका नाम से उज्जैयिनी का अत्यंत महत्त्व और वैशिष्ठ्य बताया गया है। द्वादश ज्योतिर्लिंगों में से एक ज्योतिर्लिंग तथा इक्यावन शक्तिपीठों में से एक शक्तिपीठ इसी नगरी में स्थित है।

ब्रह्मांड में व्याप्त अनंत चेतना के साकार विग्रह ज्योतिर्लिंग शिव तथा उनकी समवेत शक्ति-माँ हरसिद्धि उज्जैयिनी के केंद्र में स्थित है। पुरातन काल से शिव-उपासकों और शक्ति-साधकों के लिए यह नगरी दिव्य साधनास्थली, जाग्रत तीर्थ एवं पुण्यधाम के रूप में प्रतिष्ठित रही है।

भारतीय काल गणना के सिद्धांतों में महाकाल का यह स्थान संपूर्ण ब्रह्मांड व इस पृथ्वीलोक का नाभिस्थल है। यह माना जाता है कि काल को भी अपने वश में रखने वाली तथा काल का अतिक्रमण करने में समर्थ महाकालरूपी शिवसत्ता अपनी ज्योतिर्मय प्रकृति और शक्ति-सामर्थ्य के साथ यहाँ विराजमान होकर संपूर्ण सृष्टि का संचालन करती है।

महाकालेश्वर के मंदिर में स्थित ज्योतिर्लिंग में सृष्टि का यही रहस्य समाहित है, इसलिए पृथ्वीलोक में स्थित द्वादश ज्योतिर्लिंगों में भगवान शिव के महाकालरूप ज्योतिर्लिंग का विशेष महत्त्व और प्रधानता है।

शास्त्रों में तीनों लोकों में शिवलिंग के स्थानों का उल्लेख है, जिसमें पृथ्वीलोक पर महाकाल की अभ्यर्थना की गई है। यथा—

आकाशे तारकं लिङ्गं, पाताले हाटकेश्वरम्।
भू लोके च महाकाले, लिङ्गत्रय नमोस्तुते॥

धार्मिक, सांस्कृतिक और ऐतिहासिक दृष्टि से भी उज्जैयिनी नगरी अत्यंत महत्त्वपूर्ण और भारतीय चेतना के उत्कर्ष का केंद्र रही है। विंध्य पर्वत के आँचल में शिप्रा के दक्षिण तट पर बसी इस नगरी को मंदिरों की नगरी भी कहा जाता है। प्रत्येक बारह वर्ष के अंतराल में यहीं सिंहस्थ कुंभ मेला आयोजित होता है। इसकी पावन भूमि पर पग-पग पर देवस्थान, तपोभूमि और तीर्थस्थल मौजूद हैं।

महाकालवन में रुद्रसागर के समीप महाकाल का भव्य मंदिर एवं सर्वकामार्थसिद्धिदा माँ हरसिद्धि का विशाल मंदिर स्थित है। इसके अलावा चिंताहरण विनायक मंदिर, हनुमान मंदिर, चौरासी महादेव मंदिर, ग्यारह रुद्र, बारह आदित्य, छह गुप्त लिंग, नवग्रह, छह विनायक, चौबीस देवी, दस विष्णु, आठ मातृशक्ति व अन्य सैकड़ों तीर्थ मिलकर उज्जैयिनी को भारत की धार्मिक आस्था-अस्मिता के प्रतीक-पर्याय का स्वरूप प्रदान करते हैं।

प्राचीन भारत के स्वर्णिम इतिहास तथा वैभव-समृद्धि का एक बड़ा और महत्त्वपूर्ण केंद्र मध्य भारत की यह तीर्थनगरी भी रही है। विक्रम संवत् का आरंभ महाराज विक्रमादित्य द्वारा यहीं से किया गया था।

वे भर्तृहरि के बाद सबसे प्रतापी और प्रसिद्ध राजा हुए, जिन्होंने उज्जैयिनी के प्राचीन स्वर्णिम इतिहास और ज्ञान-विज्ञान, शिक्षा, ज्योतिष व एक बड़े व्यापार के केंद्र के रूप में विकसित कर भारतीय संस्कृति के गौरव का प्रतीक बनाया। कालिदास की प्रतिभा का चमत्कार इसी काल में जन्मा, वराहमिहिर की ज्ञानज्योति से पूरे विश्व में इस नगरी को गणित, ज्योतिष, खगोल, भू-गर्भ विज्ञान आदि अनेक भारतीय विद्याओं के अध्ययन-अध्यापन के केंद्र के रूप में पहचान मिली। कुछ इतिहासकारों ने पाली भाषा के जन्म की भूमि भी इसी नगरी को माना है।

इसी धरा से जाकर महाकात्यायन ने एशिया भू-भाग के तिब्बत आदि अनेक देशों में बौद्ध धर्म को विस्तार दिया। वराहमिहिर और महाकवि कालिदास की गिनती तो राजा विक्रमादित्य की सभा के नौ रत्नों में की जाती है। माँ हरसिद्धि मंदिर के प्रांगण में दाईं ओर आज भी विक्रमादित्य की सभा और उनके नौ रत्नों की मूर्तियाँ उत्कीर्ण हैं।

वराहमिहिररचित वृहद संहिता भारतीय ज्योतिष, गणित व अनेक विद्याओं का प्रामाणिक ग्रंथ माना जाता है। आज से लगभग पंद्रह-सोलह सौ वर्ष पूर्व के प्राचीन भारत का वास्तविक स्वरूप जानने के लिए यह ग्रंथ सर्वाधिक उपयुक्त माना गया है। इसमें राज्य, जनपद, समाज के रीति-रिवाजों, परंपराओं व जन-विश्वासों के रूप में बृहत्तर भारतीय संस्कृति एवं जीवनमूल्यों का स्वर्णिम इतिहास सँजोया हुआ है।

कला, साहित्य, शिक्षा, ज्ञान के साथ-साथ तंत्र-मंत्र, ज्योतिष व शक्ति-उपासना का भी उज्जैयिनी का दिव्य धाम एक प्रसिद्ध स्थल रहा है। स्वयं माँ हरसिद्धि के रूप में यहाँ श्रीयंत्र प्रतिष्ठित है। इसके साथ ही महालक्ष्मी और महासरस्वती के विग्रह भी प्रतिष्ठित हैं। श्रीयंत्र के पृष्ठभाग में भगवती भद्रकाली और भैरव का स्थान है। भूतल में आदिशक्ति महामाया का मंदिर है, जहाँ निरंतर अखंड ज्योति जलती है।

कहा जाता है कि यह देवी शक्तिस्थान उज्जैयिनी के महाराजा विक्रमादित्य की आराधना स्थली थी। शक्ति-उपासना और योग सिद्धि के उद्देश्य से हर काल में साधक यहाँ आते रहे हैं। तांत्रिक परंपराओं में शिव और शक्ति की उपासना सर्वाधिक प्रसद्धि है। शक्तिपीठ के रूप में माँ हरसिद्धि का मन्दिर तथा महाकालरूपी शिव की दक्षिणमुखी मूर्ति ने इस क्षेत्र को तंत्र-साधना की दृष्टि से अत्यंत महत्ता प्रदान की है।

यद्यपि इस वैभवशाली, समृद्ध, सांस्कृतिक और आध्यात्मिक तीर्थ का स्वरूप प्राचीनकाल के स्वर्णिम युग जैसा नहीं रहा है; क्योंकि समय-समय पर भारत पर हुए विदेशी आक्रमणों और गुलामी के कालों में उज्जैयिनी की समृद्ध विरासत को भी लूटने व नष्ट-भ्रष्ट करने का प्रयास होता रहा है।

अत: वर्तमान में यह अपने पुरातन स्वर्णिम स्वरूप में नहीं दिखाई देती है, परंतु आज भी यह नगरी भारतीय धर्म, उपासना, कला, संस्कृति, ज्ञान-विज्ञान और व्यापार की दृष्टि से अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। विश्वविख्यात विक्रम विश्वविद्यालय, कालिदास अकादमी से लेकर अनेक प्रतिष्ठित शिक्षा व ज्ञान के केंद्र यहाँ संचालित हैं। कुंभ के अलावा भी महाकाल ज्योतिर्लिंग और माँ हरसिद्धि के दर्शन

करने तथा भारत के गौरवशाली समृद्ध-सांस्कृतिक वैभव को देखने-समझने के लिए वर्ष भर लाखों श्रद्धालुओं का आगमन उज्जैन तीर्थ की धरा पर निरंतर होता रहता है।

इस नगरी के ऐतिहासिक, सांस्कृतिक और आध्यात्मिक महत्त्व को ध्यान में रखते हुए वर्तमान सरकार द्वारा अयोध्या, काशी की तरह ही यहाँ भी महाकाल लोक व रुद्र सागर योजना को क्रियान्वित कर राष्ट्र-संस्कृति की इस अमूल्य विरासत को और अधिक सहेजने-सँभालने की सराहनीय पहल की है। यह सभी सनातन धर्म और अस्मिता से जुड़े जनमानस के लिए अत्यंत गौरव एवं गर्व का विषय है। इस महाशिवरात्रि के पावन पर्व पर भगवान महाकाल की इसी पुण्यभूमि का स्मरण हम करते हैं, जिसे भगवान शिव की आराधना का केंद्र कहा जा सकता है। कालों का अतिक्रमण करने वाले भगवान महाकाल का अनुग्रह हमें प्राप्त हो ऐसी प्रार्थना है। ❑

एक बार हनुमान जी की भेंट अर्जुन से हुई। हनुमान राम के भक्त थे और अर्जुन श्रीकृष्ण के। दोनों में विवाद हो गया। हनुमान जी राम को और अर्जुन श्रीकृष्ण को बलवान बताने लगे। विवाद का निर्णय न होते देख परीक्षा करने का निश्चय हुआ और शर्त तय हुई कि जो हारे वह आत्महत्या कर ले। अर्जुन ने श्रीकृष्ण का ध्यान किया और समुद्र पर एक विशाल पुल बाँध दिया और हनुमान जी से बोले—"अब यदि तुम्हारे राम बली हैं तो इस पुल को तोड़ दो। यदि न तोड़ सके तो राम का पराक्रम तुच्छ माना जाएगा।" हनुमान जी पुल पर कूद पड़े।

भगवान को इस बात का पता लगा तो बहुत चिंतित हुए। उन्होंने सोचा कि दोनों को किस प्रकार बचाया जाए। कुछ सोच-विचार कर वे स्वयं ही पुल के नीचे लेट गए। हनुमान जी ज्यों ही पुल पर कूदे कि उनके भार से भगवान का शरीर चोटिल हो गया, रक्त बहने लगा। हनुमान जी ने श्रीराम को पहचाना और रोने लगे। अर्जुन को भगवान ने श्रीकृष्ण के रूप में दर्शन दिया तो वे भी निकट आकर विलाप करने लगे। भगवान बोले—"मैं एक हूँ, मेरे अनेक रूप हैं। इसलिए झगड़ा नहीं करना चाहिए। कोई विवाद हो तो उसे विवेकपूर्वक हल कर लेना चाहिए।"

आत्मज्ञान ही है सर्वोपरि संपदा

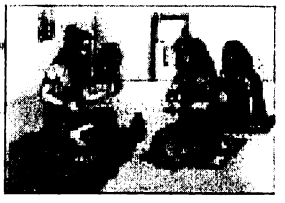

महर्षि याज्ञवल्क्य की दो पत्नियाँ थीं—मैत्रेयी और कात्यायनी। मैत्रेयी और कात्यायनी दोनों की प्रवृत्ति व प्रकृति एकदूसरे से सर्वथा भिन्न थीं। कात्यायनी में जहाँ भौतिक व सांसारिक सुख भोग पाने की तीव्र लालसा थी तो वहीं मैत्रेयी में आत्मज्ञान, ब्रह्मज्ञान पाने की तीव्र लालसा थी। सांसारिक धन-दौलत को पाने या उसे संग्रह करने के बजाय मैत्रेयी में आत्मा की अमरता को पाने की बड़ी तीव्र लालसा थी।

जब महर्षि याज्ञवल्क्य तपस्या करने जाने लगे तो उन्होंने अपनी दोनों पत्नियों को बुलाकर कहा—''जीवन का चरम लक्ष्य पाने के लिए अब मैं घर-बार छोड़कर जा रहा हूँ, पर इससे पहले मैं चाहता हूँ कि समस्त घरेलू संपदा व धन-संपदा का बँटवारा तुम दोनों के बीच कर दूँ। मैं तुम दोनों के लिए ही जीवन-निर्वाह की उचित व्यवस्था करके घर से तपस्या को जाना चाहता हूँ।''

यह सुनकर धन-संपदा की अभिलाषी कात्यायनी बहुत प्रसन्न हुई, पर मैत्रेयी ने याज्ञवल्क्य से कहा—''हे नाथ! यदि सारे संसार की धन-संपदा मुझे मिल भी जाए तो क्या मुझे उससे आत्मज्ञान की, ब्रह्मज्ञान की उपलब्धि हो जाएगी? क्या उस धन-संपदा को पाकर मुझे आत्मा की अमरता का ज्ञान हो सकेगा? क्या धन-संपदा को पाकर मैं अमर हो सकूँगी? यदि नहीं तो फिर वैसी धन-संपदा लेकर मैं क्या करूँगी? इसलिए हे नाथ! मुझे ऐसी किसी भी धन-संपदा की लालसा नहीं है।''

इतना कहकर मैत्रेयी ने अपने हिस्से की धन-संपदा भी कात्यायनी को सौंप दी। तब महर्षि याज्ञवल्क्य ने मैत्रेयी से कहा—''हे मैत्रेयी! मैं जिस ब्रह्मज्ञान को पाने की लालसा से तप करने को जाना चाहता हूँ, भगवत्कृपा से तुम्हारी लालसा भी उसी ब्रह्मज्ञान को पाने की है। जिस वस्तु से मुझे प्यार है, वही वस्तु तुम्हें भी प्रिय है। इसलिए घर से जाने से पूर्व मैं तुम्हें कुछ अमृत-उपदेश देना चाहता हूँ, जिस पर चिंतन-मनन व आचरण करते रहने से एक दिन तुम्हें ब्रह्मज्ञान की उपलब्धि अवश्य हो सकेगी।''

तब महर्षि याज्ञवल्क्य ने उपदेश करते हुए कहा—''हे मैत्रेयी! इस संसार में पति-पत्नी, माता-पुत्र, भाई-भाई, भाई-बहन, संतान तथा कुटुंबीजन सभी एकदूसरे से सुख पाने की कामना से ही परस्पर प्रेम करते हैं। उसमें दूसरे को सुख देने की भावना मुख्य नहीं होती। सुख की कामना का केंद्र होने के कारण ही प्रत्येक पदार्थ या प्राणी एक-दूसरे को प्रिय लगता है।''

ऋषिवर फिर बोले—''हे मैत्रेयी! अपनी जिस आत्मा को सुख पहुँचाने में हम सारा जीवन पूरी शक्ति से लगे रहते हैं, उस आत्मा के स्वरूप को पहचानना ही हमारे जीवन का लक्ष्य होना चाहिए। इसको जान लेने पर मन के सारे तर्क-वितर्क, द्वंद्व-दुःख दूर हो जाते हैं। अस्तु तुम इसी तत्त्वज्ञान को ग्रहण करो। इसी में तुम्हारे जीवन की सफलता है और इसी में मानव जीवन की गरिमा है।''

अपनी बात को स्पष्ट करते हुए ऋषिवर ने मैत्रेयी से कहा—''देखो, इस शरीर या संसार में आत्मा ही सत्य है और समग्र ज्ञान और पदार्थ उसी आत्मा की अमरता को जानने के लिए साधनमात्र

हैं। इसलिए आत्मा को ही जानो, मानो व पहचानो। यही शाश्वत सत्य है। यही रहस्य है।'' फिर ऋषिवर ने मैत्रेयी के सामने कई सुंदर उदाहरण देकर अदृश्य परंतु ज्ञान के मूल लक्ष्य आत्मा की श्रेष्ठता को स्पष्ट किया।

वे कहने लगे—''जब नगाड़े को बजाया जाता है तो उसमें से आवाज निकलकर बाहर आ जाती है। मैत्रेयी! यदि तुम उस नगाड़े से निकल रही ध्वनियों को पकड़ना चाहो तो नहीं पकड़ सकती। हाँ! तुम नगाड़े पर हाथ रखकर या नगाड़े बजाने वाले के हाथ को पकड़कर यानी उसे नगाड़े बजाने से रोककर ही उन ध्वनियों को रोक सकती हो। उन ध्वनियों को नगाड़े से निकलने से रोक सकती हो। उसी प्रकार इंद्रियरूपी नगाड़े की आवाज को पकड़ने या रोकने के लिए तुम पहले पाँच कर्मेंद्रियों और पाँच ज्ञानेंद्रियों पर संयम, पकड़ या नियंत्रण करके, तुम आगे बढ़कर आत्मा को पकड़ लो। तब सारे काम स्वत: ही सध जाएँगे।''

ऋषिवर ने नगाड़े के बाद दूसरा उदाहरण शंख का दिया। उन्होंने कहा—''शंख हमें आँखों से दिखता है। उसको बजाने पर उसमें से निकले शब्द कानों से सुनाई पड़ते हैं, पर नेत्रों से नहीं दीख पड़ते। अब यदि उस शंख की आवाज को तुम रोकना चाहो तो पहले शंख को पकड़ना होगा और शंख बजाने वाले को रोकना होगा। शंख को फूँकने पर, उससे ध्वनि तो निकलेगी ही। उसे बजाने पर उससे आवाज तो निकलेगी ही।''

वे आगे बोले—''अस्तु यदि शंख से निकलने वाली ध्वनि को रोकना है तो उसे फूँकने या बजाने पर ही रोक लगानी होगी। ठीक उसी प्रकार हमारी इंद्रियों की विषय-भोगों की ओर जो दौड़ है, जो आकर्षण है उसे रोकने के लिए मन में विषय-भोगों को पाने या भोगने की जो प्रवृत्ति है, उसे पकड़ना होगा, उसे मिटाना होगा। यदि वह प्रवृत्ति ही मिट गई तो इंद्रियाँ उन विषयों को देखकर भी उनकी ओर आकर्षित नहीं हो सकेंगी। यदि लगाम को ही पकड़ लिया जाए तो इंद्रियों के घोड़े अपने आप नियंत्रित हो जाएँगे। यदि मन से विषय-भोगों को पाने की प्रवृत्ति को ही मिटा दिया जाए तो फिर इंद्रियों से विषयों को पाने की कोई रजोगुणी या तमोगुणी ध्वनि निकलेगी ही नहीं।''

फिर ऋषिवर ने तीसरा उदाहरण वीणा का दिया और कहा—''हे मैत्रेयी! यदि वीणा की मीठी तान या स्वरों को तुम ग्रहण करना चाहो, तो उसकी मधुरता पाने के लिए तुम तान को नहीं पकड़ सकती। उसके लिए पहले वीणा को और अंत में उसे बजाने वाले हाथों को पकड़ लो। उस मीठी तान को छेड़ने वाला अंतिम रूप में आत्मा ही है। चूँकि आत्मा स्वयं वीणावादक है, इसलिए वीणा से झर रहे स्वर में, तान में जो मधुरता है, वह वस्तुत: आत्मा की ही मधुरता है और आत्मा की मधुरता ही वीणा की तान में मुखरित हो रही है। इसलिए हे मैत्रेयी! तुम उस आत्मा को ही जानो, पहचानो जो मधुरता, अमरता और आनंद का वास्तविक स्रोत है।''

इसके बाद ऋषिवर ने कहा—''हे मैत्रेयी! मैं तुम्हें एक और उदाहरण देता हूँ। जैसे पानी में घुले नमक को उससे अलग नहीं किया जा सकता, वैसे ही यह आत्मा जीवन की शक्ति और सृष्टि के सारे पदार्थों में व्याप्त है। जब तक वे पदार्थ उस आत्मा से पृथक रहते हैं, तब तक उनकी अलग सत्ता का अनुभव होता है, पर जब उनका आत्मा में विलय हो जाता है तो फिर उनकी पृथक सत्ता नहीं रहती।''

अंत में ऋषिवर ने कहा—''हे मैत्रेयी! यह सच है कि आत्मा और सृष्टि के पदार्थों को अलग मानना ही भय और दुःख का कारण है। इसलिए आत्मा को पहचानो। यही रहस्य है। वेद-शास्त्रों का यही अनुशासन, आदेश है तथा मेरा भी यही उपदेश है। इसी तत्त्व को भली भाँति जानो, पहचानो और उस पर आचरण करो।''

इस प्रकार मैत्रेयी के समक्ष आत्मतत्त्व को प्रकाशित कर महर्षि याज्ञवल्क्य तप करने को तपोवन की ओर प्रस्थान कर गए।

कालांतर में मैत्रेयी तप-साधना के उसी पथ पर चलती हुई एक विदुषी व तपस्वी नारी के रूप में विख्यात हुईं। ❑

भगवान शिव एवं पार्वती आकाश मार्ग से जा रहे थे। रास्ते में पार्वती जी ने पृथ्वी की ओर दृष्टि डाली तो उन्हें एक परिवार दिखाई पड़ा। पिता को कुष्ठ रोग था, माँ का आधा चेहरा जला हुआ था और उनका लड़का लँगड़ाकर चल रहा था। परिवार की यह स्थिति देखकर पार्वती जी को उन पर दया आ गई। पार्वती जी भगवान शिव से अनुनय करते हुए बोलीं—''प्रभु! आप तो सर्वशक्तिमान हैं, आप इन पीड़ितों का कल्याण क्यों नहीं करते।'' भगवान शिव उत्तर में केवल मुस्कराए और बोले—''देवी! आप जैसे कहें, वैसे इनको सहायता प्रदान कर देते हैं।'' पार्वती जी के कहने पर भगवान शिव उनको एक-एक वरदान देने को राजी हो गए।

भगवान शिव-पार्वती परिवार के समक्ष प्रकट हुए और सबसे पहले महिला से बोले—''वह अपनी इच्छानुसार वर माँगे।'' महिला बोली—''भगवान! आप मुझे दुनिया की सबसे सुंदर महिला बना दें।'' प्रभु के 'तथास्तु' कहते ही वह सुंदर युवती में बदल गई। उसका पति यह देखकर मन-ही-मन कुढ़ने लगा। अब वरदान माँगने की उसकी बारी थी। उसने माँगा—''भगवान! मेरी पत्नी को कुरूप राक्षसी में बदल दें।'' ये इच्छा भी पूर्ण हुई। उनका बच्चा माँ का रूप देखकर रोने लगा। उससे वरदान माँगने को कहा तो उसने कहा—''प्रभु! मेरी माँ जैसी-थी-वैसी ही कर दें।'' उसकी माँ अपने आधे जले चेहरे के साथ वापस आ गई। तीनों ने वरदान माँग भी लिए, पर तीनों यथास्थिति में रहे। वहाँ से लौटते हुए भगवान शिव, माँ पार्वती से बोले—''देवी! इस संसार में हर व्यक्ति अपनी मनःस्थिति के अनुसार स्थान पाता है। भगवान भी उनकी ही सहायता करते हैं, जो अपनी सहायता करने को तत्पर रहते हैं।''

आत्मसाक्षात्कार से आनंद की ओर

परब्रह्म परमात्मा सर्वज्ञ हैं, सर्वव्यापी हैं, सर्वशक्तिशाली हैं। वे अजन्मे, अनाम, अरूप, अव्यक्त हैं और अविकारी हैं। वे निर्गुण और निराकार हैं। वे अपनी इच्छा व संकल्प मात्र से सगुण और साकार रूप में भी प्रकट होते हैं, क्योंकि उनके लिए कुछ भी असंभव नहीं। इस संपूर्ण सृष्टि के स्रष्टा भी वही हैं। वे ही इस अखिल विश्व-ब्रह्मांड के नायक, पालक और संहारक हैं। जीवात्मा उसी परब्रह्म परमात्मा का अंश है।

हमारी आत्मा उसी परब्रह्म परमात्मा की एक चिनगारी है। अस्तु परमात्मा की दिव्यता, सर्वज्ञता, महानता आदि सब कुछ जीवात्मा में, हमारी आत्मा में भी बीज रूप में विद्यमान हैं। परमात्मा सत्-चित्-आनंदस्वरूप हैं। अत: सत्-चित्-आनंद के तत्त्व भी हमारी आत्मा में बीज रूप में विद्यमान हैं। परमात्मा प्रेमस्वरूप हैं, ज्ञानस्वरूप हैं, आनंदस्वरूप हैं। अस्तु प्रेम, ज्ञान और आनंद के तत्त्व बीज भी हमारी आत्मा में व्याप्त हैं, विद्यमान हैं।

जैसे एक छोटी-सी चिनगारी उपयुक्त ईंधन का संस्पर्श-सान्निध्य पाते ही असंख्य गुना बड़ी होकर दावानल में बदल जाती है—वैसे ही आत्मा में परमात्मा का चिंतन करते-करते आत्मा में बीज रूप में व्याप्त परमात्मा का परम प्रेम, परम ज्ञान, परम सत्य, परम आनंद एक दिन प्रकट होने लगता है।

परमपूज्य गुरुदेव युगऋषि श्रीराम शर्मा आचार्य जी के अनुसार आत्मा में परमात्मा का सतत ध्यान करते रहने से अंतत: मनुष्य को आत्मसाक्षात्कार अर्थात अपने वास्तविक स्वरूप का बोध होता है। वह अपनी आत्मा में सदैव ही निर्गुण, निराकार ब्रह्म की अनुभूति पाता है। उसे अपनी आत्मा में परम शांति, परम सुख व परम आनंद की अनुभूति होती है। तब उसके लिए इस संसार में कुछ भी प्राप्त करना शेष नहीं रह जाता।

वह जो भी सत्य संकल्प, शुभ संकल्प करता है वह बिना किसी प्रयत्न के तत्काल सिद्ध हो जाता है। उसका यह अमूल्य और दुर्लभ मानव जीवन सफल हो जाता है। इसलिए मनुष्य को सदा अपने हृदय में ज्योतिस्वरूप परमात्मा को देखना चाहिए। उनका सदैव चिंतन व ध्यान करते रहना चाहिए।

मनुष्य को अपनी प्रकाशस्वरूप आत्मा का प्रत्यक्ष दर्शन करने के लिए सदैव प्रयत्नशील होना चाहिए। फिर हम अपनी आत्मज्योति का ध्यान करें तो कैसे करें ? साधक को नित्य स्नान व स्वच्छ वस्त्र धारण करने के पश्चात किसी साफ-स्वच्छ, प्राणवायु से भरे स्थान पर आसन बिछाकर पद्मासन या सुखासन में बैठकर या अपनी स्थिति के अनुसार किसी आराम-कुरसी पर बैठकर या किसी मुलायम बिछौने पर आरामपूर्वक लेटकर अपने शरीर को शांत व शिथिल करना चाहिए।

अपने श्वास-प्रश्वास पर ध्यान केंद्रित करना चाहिए। प्राणाकर्षण व भ्रामरी प्राणायाम का अभ्यास करते हुए मन को शिथिल व शांत करना चाहिए। तत्पश्चात अपनी आँखों को सहजतापूर्वक बंद कर अपने हृदय की गुफा में ज्योतिस्वरूप आत्मा का, परमात्मा का ध्यान करना चाहिए।

यह अभ्यास 10-15 मिनट तक नित्य करना चाहिए। महीनों तथा वर्षों के अभ्यास के बाद यह ध्यानाभ्यास बिना आँखें बंद किए, बिना किसी

विशेष आसन में बैठे हुए भी, चलते-फिरते, स्वयमेव ही होने लगता है और साधक को असीम शांति व सुख का अनुभव होता है।

तब वह अपने हर कार्य को शत-प्रतिशत एकाग्रता के साथ करता है और उस कार्य को कुशलतापूर्वक संपन्न कर सर्वत्र सफलता व सम्मान पाता है। चूँकि उसे अपने वास्तविक स्वरूप का बोध हो जाता है कि मैं शरीर नहीं, वरन परमात्मा का दिव्य अंश आत्मा हूँ, अस्तु वह देह, संसार या संसार के प्रति मोह और आसक्ति से मुक्त होकर निष्ठा भाव से हर कर्म करता है।

फलासक्ति और कर्त्तापन की भावना से मुक्त होकर कर्म करने के कारण उसे परिणाम कभी प्रभावित नहीं करते। वह मान-सम्मान, हर्ष-विषाद, लाभ-हानि, जय-पराजय आदि द्वंद्वों से मुक्त होने, परे होने के कारण सदैव समभाव की स्थिति, समत्व की स्थिति में रहता हुआ आनंदित होता रहता है।

कर्म-संस्कार से मुक्त हो जाने व वर्तमान जीवन में सदैव निष्काम कर्म करते रहने के कारण वह जन्म-मरण के बंधन से भी मुक्त हो जाता है। महाभारत के शांति पर्व में मोक्षधर्म पर्व के अंतर्गत 204वें अध्याय में आत्मा व परमात्मा के साक्षात्कार के उपाय तथा उनके महत्त्व का वर्णन करते हुए कहा गया है कि जिस प्रकार मनुष्य स्वच्छ और स्थिर जल में नेत्रों द्वारा अपना प्रतिबिंब देखता है, वैसे ही परमात्मा का सदैव चिंतन व ध्यान करने पर मन व इंद्रियों के शुद्ध व स्थिर हो जाने पर जीव, साधक ज्ञानदृष्टि से ज्ञेयस्वरूप आत्मा का साक्षात्कार कर पाता है।

हिलते हुए जल में जैसे मनुष्य अपना रूप नहीं देख पाता, उसी प्रकार मनसहित इंद्रियों के चंचल होने पर वह अपने भीतर स्थित ज्योतिस्वरूप आत्मा का दर्शन नहीं कर पाता। अविवेक से बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है और उस भ्रष्ट बुद्धि से मन राग-द्वेष आदि दोषों में फँस जाता है। इस प्रकार मन के दूषित होने से उसके अधीन रहने वाली पाँचों इंद्रियाँ भी दूषित हो जाती हैं।

अज्ञानतावश सदा विषयों के अगाध जल में डूबे रहने पर भी मनुष्य को कभी तृप्ति नहीं मिलती। वह प्रारब्धाधीन हुआ, विषय-भोगों की इच्छा के कारण बारंबार इस संसार में आता और जन्म ग्रहण करता रहता है।

सदा विषयों में रचे-पचे रहने के कारण तथा मन के द्वारा भोगों की इच्छा रखने से मनुष्य को आत्मसाक्षात्कार व परब्रह्म परमात्मा की प्राप्ति नहीं होती; क्योंकि जो मन परमात्मा में लीन होकर परमात्मा को पा सकता है, वह मन तो भोगों में ही रचा-पचा है। फिर उस मनुष्य को परमात्मा की प्राप्ति होगी भी तो क्यों और कैसे? इसलिए मन को विषयों से निकालकर बारंबार परमात्मा में लगाते रहना चाहिए।

ऐसा अभ्यास नित्य-निरंतर और दीर्घकाल तक करते रहने से मन विषयों के चिंतन से मुक्त होकर परमात्मा में लीन होने लगता है और अंततः मनुष्य को आत्मसाक्षात्कार व परमात्मप्राप्ति के रूप में परमानंद की प्राप्ति होती है। उसे इस परम सत्य की अनुभूति होने लगती है कि जैसे घड़े का आकाश महाकाश का अंश है, वैसे ही शरीररूपी घड़े में स्थित आत्मा भी महाकाश (परमात्मा) का ही अंश है।

जो आकाश घड़े में व्याप्त है, वही आकाश महाकाश में व्याप्त है। घड़े का आकाश महाकाश से अलग नहीं है। वह तो घड़े की, शरीर की आकृति ही वैसी है, जिसके कारण उसके अंदर का आकाश महाकाश, आसमान के आकाश से भिन्न दिखता है, पर वास्तव में भिन्न है नहीं। दोनों ही आकाश वस्तुतः एक ही हैं। उस घड़े के फूट जाने पर, उस घड़े का आकाश उसी अनंत-असीम महाकाश में विलीन हो जाता है।

वैसे ही आत्मा परमात्मा से अलग नहीं है। वह आत्मा उसी परब्रह्म, सर्वव्यापक, सर्वज्ञ परमात्मा का अंश है, जो हर मनुष्य के हृदय में आत्मज्योति के रूप में जगमगा रहा है। इस शाश्वत सत्, परम सत्य की अनुभूति में स्थित होना ही परमानंद में स्थित होना है।

आत्मज्ञान, आत्मसाक्षात्कार हो जाने पर जीवात्मा को यह प्रत्यक्ष अनुभव होने लगता है कि जैसे घड़े का जल एवं सागर का जल तत्त्वत: एक ही हैं—वैसे ही जीव और ब्रह्म, आत्मा और ब्रह्म अभिन्न हैं।

सागर की सतह पर तैरता हुआ घड़ा, जब सागर में डूबता है या फूटता है तो उस घड़े का जल भी सागर में मिलकर सागर ही हो जाता है। उसी प्रकार जीवात्मा भी परमात्मा में लीन होकर एकरस, एकरूप हो जाता है। कल तक जो व्यक्ति स्वयं को मात्र राम प्रसाद पुत्र श्याम प्रसाद, गाँव—फलाँ, शहर—फलाँ, देश—फलाँ का निवासी मानकर तदनुरूप लोक व्यवहार किया करता था, मात्र पेट, परिवार की चिंता में डूबा रहता था, दूसरों के दु:ख और कष्ट को देखकर अप्रभावित रहता था, जो सम्मान पाकर फूला नहीं समाता था और अपमान पाते ही बिलखने लगता था, जो किसी कार्य में सफलता पाकर अति हर्षित होता था और असफलता मिलते ही मुरझा-सा जाता था—वही व्यक्ति अपने वास्तविक स्वरूप का ज्ञान होते ही स्वयं को एक छोटे-से परिवार का सदस्य मात्र नहीं मानता।

उसके लिए तो यह अखिल विश्व-ब्रह्मांड ही उसका घर बन जाता है। वह स्वयं को एक छोटे से गाँव, शहर या देश की सीमा में बँधा हुआ नहीं मानता। उसके लिए तो पूरा विश्व ही परिवार बन जाता है, वह अपने आप को परमात्मा द्वारा रचित इस सृष्टि का एक महत्त्वपूर्ण सदस्य मानता है और सिर्फ मानता ही नहीं, बल्कि तदनुरूप सोचता और लोक व्यवहार भी करता है। वह मात्र व्यष्टिगत या व्यक्तिगत हित में नहीं, बल्कि समष्टिगत हित में, समाज हित में, विश्व हित में, लोक हित में सोचता है।

भाव-संवेदना से ओत-प्रोत होने के कारण दूसरों की पीड़ा उसे पीड़ित और प्रभावित करती है। अस्तु वह पीड़ा-निवारण में भी सदैव तत्पर रहता है। वह मंदिर और मूर्तियों के भगवान को जन-जन में अभिव्यक्त होते हुए देखता है। आत्मविस्तार होने के कारण वह संपूर्ण सृष्टि को भी स्वयं का ही विस्तार मानता है। वह संपूर्ण सृष्टि को भगवान की भौतिक अभिव्यक्ति मानता है।

त्वं नो मेधे प्रथमा।

अर्थात सद्बुद्धि ही संसार में सर्वश्रेष्ठ है।

वह हर्ष-विषाद, मान-अपमान, सफलता-असफलता, हानि-लाभ आदि द्वंद्वों से परे होकर हमेशा आनंदित और प्रफुल्लित रहता है। वह हमेशा निर्भय, शोकरहित और आनंदित रहता है। मन से पापवृत्ति मिट जाने के कारण वह सदैव पुण्य व शुभ कर्मों में ही संलग्न रहता है। आचार्य शंकर (विवेक चूड़ामणि-224-25) के अनुसार अपने निजस्वरूप का ज्ञान हो जाने पर व्यक्ति शोकरहित, निर्भय और आनंदघनरूप हो जाता है और वह पुरुष आनंदस्वरूप ब्रह्मपद को प्राप्त कर लेता है।

वस्तुत: अपने आत्मस्वरूप को जानने की बात तो समझने और अनुभव करने की है और यह अनुभव वाद-विवाद या विमर्श से संभव नहीं। इसके लिए तो हमें स्वयं अपने जीवन में आध्यात्मिक प्रयोग करने होंगे और तभी हम उनके परिणामों को अपने भीतर अनुभव कर सकेंगे। ❑

श्रेष्ठतम आध्यात्मिक मार्ग है योग

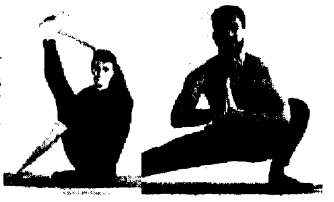

योग अध्यात्म जगत् का सर्वोत्कृष्ट विज्ञान है। यह स्वयं साध्य और साधन, दोनों है। इसे मनुष्य जीवन का चरम लक्ष्य भी कहा गया है व इस लक्ष्य की प्राप्ति का श्रेष्ठतम-सुलभतम मार्ग भी। इस प्राचीनतम विधा के मर्मज्ञों-विशेषज्ञों की दृष्टि में योग से श्रेष्ठतम अन्य कोई दूसरा मार्ग नहीं है।

ऋषिप्रणीत विज्ञान के रूप में योग और इसकी विभिन्न प्रणालियों, परंपराओं का मुख्य ध्येय यही है कि इसके माध्यम से मानवीय संभावनाओं को जाग्रत कर मनुष्यमात्र के जीवन को समग्रता और सार्थकता प्रदान की जा सके।

योगविद्या भारतभूमि की अमूल्य विरासत है। प्राचीनकाल से लेकर अब तक इस देवभूमि पर तपस्वियों, ऋषियों, योगियों, साधकों ने अपने साधना-तप पुरुषार्थ से योग की पुनीत परंपराओं को जाग्रत व पुष्ट बनाए रखा है। इसी धरा ने समूचे विश्व के समक्ष आत्मानुसंधान की प्रणाली के रूप में इस जीवन विज्ञान का अनावरण किया है।

भारतीय जीवन-सिद्धांतों में योग का मार्ग शाश्वत और सनातन है। इस पर चलने वालों के लिए यह साधना-पथ सदैव ही परम कल्याणकारी रहा है। जिन्होंने इसके मर्म एवं महत्त्व को जाना-समझा है, उन्होंने इस मार्ग पर चलकर-तपकर साधक, सिद्ध और योगी के रूप में विश्व मानवता के जीवन-पथ को आदिकाल से प्रकाशित एवं गतिमान बनाए रखने का कार्य किया है।

विगत कुछ दशकों में योग को लेकर भारत ही नहीं, अपितु समूचे विश्व में एक नई क्रांति और जाग्रति का वातावरण बना है। शिक्षा, चिकित्सा और समाज कल्याण से जुड़े संस्था-संस्थानों में प्राथमिकता से योग के शिक्षण-प्रशिक्षण, प्रचार-प्रसार, शोध-साधना आदि के कार्य संचालित किए जा रहे हैं। योग को लेकर अनेक स्वतंत्र संस्थान व संस्थाएँ भी स्थापित हो चुके हैं, जो राष्ट्रीय तथा अंतरराष्ट्रीय स्तर पर योग के विस्तार को गति दे रहे हैं।

इक्कीसवीं सदी में योग के प्रति उत्तरोत्तर बढ़ते आकर्षण और रुचि को देखते हुए यदि इसे योगक्रांति की सदी कहा जाए तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। अब योग केवल साधना मार्ग वालों तक ही सीमित नहीं रहा, बल्कि चिकित्सा, कैरियर, व्यवसाय, प्रबंधन, शिक्षा, स्वास्थ्य, सौंदर्य आदि अनेक क्षेत्रों में इसका विस्तार स्पष्टता से देखा जा सकता है।

जीवन-विद्या की सर्वोत्कृष्ट प्रणाली के रूप में प्राचीनकाल से चली आ रही योगविद्या का आधुनिक युग में इतना बहुआयामी विस्तार और विकास अत्यंत गर्व की अनुभूति कराने वाला है, लेकिन योग के ऐसे आधुनिक विस्तार के साथ इस पुनीत प्राचीन परंपरा में कुछ विसंगतियाँ भी दिखाई देने लगी हैं, जो हम सभी के लिए चिंता और चिंतन का विषय हैं।

यह सर्वप्रत्यक्ष है कि हमारी आधुनिक सभ्यता पर किस तरह भोगवाद की प्रवृत्ति हावी है। व्यक्ति स्वयं को केंद्र में रखकर संसार की हरेक चीज को सुख-संसाधन और उपभोग की वस्तु बनाने पर आतुर है। ऐसी प्रवृत्ति से ग्रस्त समाज में एक बहुत बड़ा वर्ग है, जो योग को भी व्यावसायिकता का एक नया क्षेत्र समझता है।

ऐसों के लिए यह साधना-मार्ग कदापि नहीं है, सिर्फ लौकिक जीवन के लिए सुख, समृद्धि और स्वास्थ्य का एक किफायती साधन मात्र है। अन्य सामानों की तरह योग की भी दुकानें सजने लगी हैं। देश-दुनिया के शहर, कस्बों, गाँवों तक में झुंड-के-झुंड लोग योगाभ्यास करते देखे जा सकते हैं।

पता नहीं इनमें से ऐसे कितने होंगे, जिनका उद्देश्य चित्तशोधन, आत्मपरिष्कार और आत्मलाभ प्राप्त करना होगा; जबकि योग का मूल ध्येय तो यही है। त्याग, अनुशासन, कठोर संयम और शुद्धता के बिना योग कभी भी साध्य नहीं है और न ही साधन। इसकी मर्यादाओं के बाहर यह करने-कराने वालों के लिए सिर्फ हाथ-पैर हिलाने और शरीर को मोड़-मुड़ा लेने की एक विशिष्ट अभ्यास-प्रक्रिया मात्र रह जाती है।

योग की शिक्षा, डिग्री, प्रमाणपत्र, उपाधि आदि प्रदान करने वाले संस्थानों की भी उत्तरोत्तर बढ़ोतरी हो रही है। स्वास्थ्य, चिकित्सा और कैरियर को लेकर भारी संख्या में युवाओं का इस ओर आकर्षण बढ़ा है। समय की माँग की दृष्टि से यह अच्छा प्रयास है, लेकिन चिंता की बात यह है कि योग की इस आधुनिक शिक्षा-प्रक्रिया में इस चैतन्य विज्ञान का जीवन के साथ अंतर्संबंध एवं मूल उद्देश्य कहीं खोता नजर आ रहा है।

यम, नियम का पालन अर्थात आचरण और चरित्र की शुद्धता इस शिक्षा की पहली अनिवार्यता है। इसके पश्चात आसन, प्राणायाम और बंध, मुद्रा आदि हठयोग की प्रक्रियाएँ आती हैं। यह यात्रा यहीं तक नहीं रुक जाती प्रत्युत धारणा, ध्यान, समाधि के सोपानों तक पहुँचकर मानव उत्कर्ष को चरितार्थ भी बनाती है। यही योग और योग शिक्षा का मूल और सार्थ ध्येय है। इससे कम में कुछ भी नहीं। ऐसे में शिक्षा जगत् से जुड़े समुदाय की यह जिम्मेदारी बनती है कि योग शिक्षा के स्वरूप को उसकी मूल भावना और उद्देश्य को सामने रखकर ही प्रस्तुत किया जाए।

शिक्षण-प्रशिक्षण का यह सामान्य नियम है कि विषय की मूल प्रकृति और मौलिकता के अनुसार ही उसको सिखाने और मूल्यांकन करने की रीति-नीति अपनाई जाती है। योग आंतरिक जीवन को रूपांतरित और परिष्कृत करने वाला एक विशिष्ट विज्ञान है, एक उच्चस्तरीय विद्या है।

आदिकाल से इसका शिक्षण-प्रशिक्षण व मूल्यांकन का कार्य ऋषिस्तर के तपस्वियों, अनुशासित योगियों, सिद्ध साधकों द्वारा ही किया जाता रहा है। शिष्यों, साधकों-अभ्यर्थियों के लिए निर्धारित कसौटियों में भी कहीं कोई छूट का प्रावधान नहीं रखा गया है। इसलिए आचार्य की योग्यता और शिक्षार्थी की पात्रता, दोनों योग के उद्देश्यपूर्ति की आवश्यक और अनिवार्य शर्तें हैं।

यहाँ इस चिंतन की आवश्यकता है कि योग की शास्त्रीय अवधारणाओं, विचारों-सिद्धांतों की जानकारी अथवा योग-क्रियाओं के कुछ बाह्य पक्ष की कुशलता प्राप्त कर-करा देने मात्र से योग का लक्ष्य पूरा नहीं हो जाता है और न ही कोई सार्थकता सिद्ध होती है, लेकिन वर्तमान में योग शिक्षा की यही सच्चाई पहचान बनते जा रही है।

योग विज्ञान की व्यापकता में इसके भौतिक व लौकिक लाभों को नकारा नहीं जा सकता है, परंतु यहीं तक इसको सीमित कर जीवन निर्माण, परिष्कार व आत्मोत्कर्ष जैसे उच्चस्तरीय प्रयोजन में इसका उपयोग न करना सर्वथा अनुचित और दुर्भाग्यपूर्ण कहा जाना चाहिए। आज व्यक्ति और समाज का जीवन मूल्यहीनता और चारित्रिक दोषों, संकीर्णताओं से त्रस्त है व समाधान पाने को व्याकुल भी।

इस समाधान हेतु एकमात्र योगमार्ग ही सार्थक उपाय है, लेकिन इसे भी हम व्यावसायिक पूर्ति

और भौतिक लाभों में ही आबद्ध कर देंगे तो फिर जीवन के आंतरिक और मूल्यात्मक क्षेत्र में फैली समस्याओं और चुनौतियों के समाधान का उपाय कहाँ खोजने जाएँगे ? अत: योग शिक्षा के किसी भी स्तर के पाठ्यक्रम अथवा प्रकल्प का सरोकार व्यक्ति के आंतरिक परिष्कार और आत्मविकास से अवश्य होना चाहिए।

योग के वास्तविक लक्ष्य और योगाभ्यास की अनिवार्य कसौटियों को सामने रखकर यदि वर्तमान के योग शिक्षा-क्षेत्र में किए जा रहे प्रयासों का मूल्यांकन करते हैं तो अनेक विसंगतियाँ व एकांगीपन नजर आता है। इस क्षेत्र में योगतत्त्व से समर्थ योग्य आचार्यों, शिक्षण की उचित परंपराओं व तकनीकों का अभाव है।

इसके मूल्यांकन की मौजूदा प्रक्रिया भी ऐसी है, जिससे यह कदापि नहीं जाना जा सकता कि किस साधक अथवा अभ्यासी की योग मार्ग में कितनी गति है अथवा आंतरिक चेतना एवं व्यक्तित्व का विकास कहाँ तक संभव हो पाया है।

गुरु-शिष्य के आदर्श एवं अंतर्संबंध भी गायब हैं। अभ्यास की अवधि भी अल्प ही रहती है। साल-दो साल में डिग्री-उपाधि के दौरान थोड़ा-बहुत अभ्यास और जानकारी प्राप्त कर लेने मात्र से बात नहीं बनने वाली। जो एक बार इस मार्ग पर चल पड़ता है, उसे अनवरत इसी दिशा में आगे बढ़ना होता है। अपने लौकिक उद्देश्यों को पूरा करते हुए भी अपनी योगयात्रा को अंतिम लक्ष्य तक जारी रखना होता है और समय-समय पर समर्थ आचार्यों का सान्निध्य भी प्राप्त करना पड़ता है।

उक्त सभी विसंगतियाँ और चुनौतियाँ आज के योग शिक्षा जगत् के समक्ष उसका कर्त्तव्य एवं उत्तरदायित्व बनकर खड़ी हैं। इस उत्तरदायित्व से न तो स्वयं विमुख हुआ जा सकता है और न अन्य को किया जा सकता है।

चिंतन, चेतना और चरित्र के परिशोधन और उत्कर्ष के विज्ञान के रूप में योग ही सार्वकालिक व सार्वभौमिक विद्या है। इस रूप में यदि योग के आंतरिक एवं सूक्ष्म पहलुओं-उद्देश्यों को योग शिक्षण-प्रशिक्षण में प्राथमिकता से स्थान नहीं दिया जाए तो इसकी शिक्षा का मुख्य ध्येय एकांगी और अधूरा रह जाएगा।

इसके लिए आवश्यकता है कि योग के बाह्य और अंत:—दोनों आयामों को सम्मिलित कर समग्रता के साथ योग शिक्षा की संरचना तैयार की जाए। डिग्री एवं उपाधियों में वैचारिक-सैद्धांतिक एवं क्रियात्मक पक्ष ही नहीं अपितु चरित्र, चिंतन और आंतरिक परिष्कार से जुड़ी कसौटियाँ भी मूल्यांकन का आधार बनें।

जो सबल है, वही जीवन संग्राम में सदा सफल होता है और ऐसा व्यक्ति चिरयुवा बना रहता है।

—परमपूज्य गुरुदेव

देव संस्कृति विश्वविद्यालय परिसर में योग शिक्षा को यही समग्र स्वरूप प्रदान करने का प्रयास रहा है। यौगिक जीवनशैली, सात्त्विक आहार-विहार, दिव्य वातावरण जैसी अनेकों विशेषताएँ यहाँ के योग शिक्षण-प्रशिक्षण को विशिष्ट और आदर्श बनाती हैं।

इस परिसर के मुखर स्वर यही हैं कि योग एक जीवन-दृष्टि, जीवनपद्धति, जीवन-उत्कर्ष और जीवन-निर्माण की सर्वोत्तम वैज्ञानिक विधा है। इसकी शिक्षा अथवा डिग्री का सार है—संयम, धैर्य, चरित्रता, कर्त्तव्यपरायणता—लौकिक जीवन के लिए तथा साधना, समर्पण, सिद्धि और मुक्ति आत्मिक जीवन के लिए। इसी चिंतन को अन्य शैक्षणिक संस्थानों द्वारा भी अपनाने की आवश्यकता है। ❑

जीवन-साधना के त्रिविध आधार श्रद्धा, प्रज्ञा और निष्ठा

परमपूज्य गुरुदेव द्वारा प्रतिपादित व्यावहारिक अध्यात्म में जिस जीवन-साधना की बात कही गई है, उसमें श्रद्धा, प्रज्ञा और निष्ठा के रूप में तीन तत्त्वों का समावेश है। इन्हें त्रिपदा कही जाने वाली गायत्री के तीन चरण भी कहा जा सकता है। ये व्यक्तित्व के स्थूल, सूक्ष्म व कारण तीन आयामों का प्रतिनिधित्व करते हैं। इनके सहारे मानवीय गरिमा के अनुरूप चिंतन, चरित्र और व्यवहार बन पड़ता है, जिनके आधार पर व्यक्तित्व का विकास सार्थक रूप में परिभाषित हो पाता है।

इनमें श्रद्धा—कारणशरीर की विशेषता है, जिसे आदर्शों के प्रति समर्पित अंतराल की भाव- संवेदना भी कहा जा सकता है। श्रद्धा सदा सत् तत्त्व या श्रेष्ठता के प्रति ही उफनती है, असत् के प्रति नहीं। जहाँ भी श्रेष्ठता के दर्शन होते हैं, वहीं श्रद्धा सहज रूप में प्रस्फुटित होती है। जिन भी चीजों में श्रेष्ठता का समावेश होता है, श्रद्धा वहीं टिकती है, अन्यत्र नहीं।

वस्तुत: श्रद्धा वह प्रकाश है, जो आत्मा के लिए सत्य की प्राप्ति का मार्ग प्रशस्त करती है। जब भी मनुष्य एक क्षण के लिए सांसारिक मोह, माया, लौकिक चमक-दमक तथा कामिनी-कांचन के पाश में आबद्ध होने लगता है तो श्रद्धा ही माता की तरह ठंढे जल के छींटे डालकर मोहग्रस्त जीवात्मा को जगा देती है। इस रूप में श्रद्धा भवसागर से पार लगाने वाली एक अलौकिक शक्ति है।

श्रद्धा व्यक्तित्व में सद्गुणों की ऐसी महक जगाती है, जो चहुदिशाओं को अपनी खुशबू से सुवासित कर देती है। श्रद्धासंपन्न व्यक्तित्व वह अथाह गहराई लिए होता है, जिसके ऐश्वर्य व स्वरूप की थाह बुद्धि द्वारा नहीं पाई जा सकती। इसे तो सरल सहज एवं संवेदनशील हृदय द्वारा अनुभव मात्र किया जा सकता है। निस्संदेह श्रद्धा वह शक्ति है, जो सत्य की सीमा तक साधक को साधे रहती है, सँभाले रहती है।

श्रद्धा का तर्क से विरोध नहीं है, लेकिन हाँ! वह तर्क की सीमा-मर्यादाओं से परे अवश्य जाती है। तर्क की पहुँच विचारों तक है; जबकि श्रद्धा विचारों के पार अनुभूतियों के दिव्य क्षेत्र में प्रवेश करती है, जिसे कोरी बुद्धि नहीं पकड़ पाती। जीवन के दिव्यक्षेत्र को मानवीय श्रद्धा ही अनुभव कर सकती है, कोरी तर्कबुद्धि नहीं, लेकिन तर्क को सर्वथा उपेक्षित कर देने पर श्रद्धा को अंधश्रद्धा में बदलते देर नहीं लगती।

ऐसे में अंधश्रद्धा अविवेक की पर्याय बन जाती है, जहाँ परंपरा का निर्वाह ही सब कुछ लगता है। उसमें उचित-अनुचित का विश्लेषण करने की क्षमता चुक जाती है। ऐसी विवेकहीन श्रद्धा आध्यात्मिक एवं लौकिक जीवन के लिए घातक ही सिद्ध होती है।

प्रज्ञा बुद्धि की परिष्कृत अवस्था है, उत्कृष्टतम स्थिति है, जिसके आधार पर वह दिव्यदृष्टि प्राप्त होती है, जो जीवन के तिमिर के बीच अपनी प्रकाशपूर्ण राह खोज लेती है। उसकी विशेषता एक ही है कि जहाँ सामान्य बुद्धि को अपना स्वार्थ और अहंकार ही सब कुछ दीखता है, शरीरगत सुविधाओं का संचय और उपभोग ही सब कुछ लगता है तो वहीं प्रज्ञा इन तात्कालिक सुख-उपभोगों के पार

दूरदर्शी परिणामों को देखती है, अपनी अंतरात्मा की ओर उन्मुख रहती है।

इस तरह प्रज्ञावान को आत्मा के दर्शन होते हैं, परमात्मा के प्रदत्त मार्ग के संकेत मिलते हैं और नीर-क्षीर विवेक के आधार पर जीवन के अलौकिक ऐश्वर्य के साम्राज्य में प्रवेश का अधिकार प्राप्त होता है।

प्रज्ञा ही साधक में इतनी सूझ व साहस प्रदान करती है कि वह उत्कृष्टता के उच्च शिखर पर अकेले ही चढ़-दौड़ सके। पूरा संसार भी विरोध में क्यों न खड़ा हो जाए, प्रज्ञावान अपनी जाग्रत प्रज्ञा के बल पर अपने मार्ग का अनुसंधान करता है, इस पर एकाकी साहस के बल पर बढ़ चलता है और बिना किसी समर्थन, सहयोग की आशा किए अपना मार्ग स्वयं प्रशस्त करता है।

प्रज्ञा के अभाव में व्यक्ति के पास मन और बुद्धि ही शेष रह जाते हैं। जो अपनी लौकिक सीमाओं में आबद्ध होने के कारण वासना-विलासिता, अहंता, संकीर्ण स्वार्थपरता जैसी हेय प्रवृत्तियों में ही लिप्त रहते हैं। उन्हीं का अक्स मन पर उतरता रहता है— इन्हीं के अनुकूल मन में कुकल्पनाएँ उठती रहती हैं, आकांक्षाएँ भड़कती रहती हैं। बुद्धि भी वाहन की तरह उन्हीं का समर्थन करने लगती है।

परिणामस्वरूप ऐसी योजनाएँ बनती हैं व क्रियान्वित होने का क्रम चल पड़ता है, जो व्यक्ति के संसार पंक में ही धँसने का कारण बनती हैं। प्रज्ञा का आलोक ही व्यक्ति को इस स्थिति से उबरने में सहायता करता है।

निष्ठा अर्थात श्रेष्ठता की पक्षधर अविचल साहसिकता, आदर्शों के प्रति अदम्य उत्साह। निष्ठा को ही उच्चस्तरीय मनोबल, आत्मबल कहते हैं। उसमें आदर्शों के प्रति समर्पित रहने का ऐसा संकल्प जुड़ा होता है, जो कठिन समय में भी सीना ताने खड़ा रह सके। जो जीवन के प्रलोभनों, आकर्षणों और दबावों के सामने झुकना न जानता हो, जो हर कीमत पर अपनी राह चलने और उत्कृष्टता के चरम लक्ष्य तक पहुँचने की ठान चुका हो।

वस्तुत: निष्ठा आत्मा की गहराई से उठने वाली शक्ति है। वह न तो लड़खड़ाना जानती है, न डगमगाना। ऐसे निष्ठावान व्यक्ति के लिए आदर्श प्राणप्रिय होते हैं। जिस प्रकार मछली पानी के बिना नहीं रह सकती, उसी प्रकार यह भी निश्चित है कि एक नैष्ठिक साधक अपने आदर्श के बिना नहीं रह सकता।

यदि किसी कारणवश आदर्शों से अभी दूरी बनी हुई है, तो यह दूरी विरह-वेदना से लेकर साधना की अँधेरी रात के रूप में रहती है, जिसे पार किए बिना उसे चैन नहीं मिलता और इसे वह अपनी श्रद्धा, निष्ठा एवं प्रज्ञा के बल पर देर-सबेर पार करके ही दम लेता है।

नास्त्ययज्ञस्य लोको वै, नायज्ञो विदन्ते शुभम्।
अयज्ञो न च पूतात्मा, नश्यतिच्छिन्नपर्णवत्॥

अर्थात यज्ञ न करने वाला मनुष्य लौकिक और पारलौकिक सुखों से वंचित रह जाता है। यज्ञ न करने वाले की आत्मा पवित्र नहीं होती, वह पेड़ से टूटे हुए पत्ते की तरह नष्ट हो जाता है।

वस्तुत: श्रद्धा, प्रज्ञा एवं निष्ठा का त्रिविध संगम ही साधक के अंत:करण का सृजन करता है। अपने इष्ट की दिव्यसत्ता शिष्य-साधक के कारणशरीर में श्रद्धा, सूक्ष्मशरीर में प्रज्ञा और स्थूलशरीर में निष्ठा बनकर प्रकट होती है।

यह मात्र कल्पना भर तो नहीं है, इसकी जाँच बार-बार कठोर आत्मपरीक्षण के आधार पर चलती रहती है और अपनी जीवन-साधना की त्वरा के साथ शिष्य-साधक इन तीनों के संग निरंतर अपने परम लक्ष्य की ओर गतिशील रहता है। यह त्रिवेणी ही जीवन-साधना का आधार है। ❑

भगवत्प्राप्ति क्यों और कैसे?

सनातन धर्म के समस्त सद्ग्रंथों, शास्त्रों, संतों व ऋषियों के अनुसार भगवत्प्राप्ति ही मानव जीवन का परम लक्ष्य होना चाहिए। हमारे शास्त्रों और संतों ने हमारे समक्ष भगवत्प्राप्ति को सर्वोच्च लक्ष्य, सर्वोच्च आदर्श के रूप में प्रस्तुत किया है; क्योंकि वे यह जानते थे कि भगवत्प्राप्ति के बिना मानव जीवन अधूरा है, निष्फल है। आनंद से भरा-पूरा जीवन ही पूर्ण जीवन है और आनंद की प्राप्ति आनंद के आदिस्रोत परमात्मा से ही संभव है।

आनंद को पाकर ही मनुष्य दु:ख, क्लेश, हताशा, निराशा, अशांति, जन्म-मरण के बंधन आदि से मुक्त हो हमेशा आनंदित, आह्लादित और प्रफुल्लित रह सकता है। परमात्मा परमानंद के स्रोत हैं, अस्तु परम आनंद की प्राप्ति परमात्मा की उपासना से ही संभव है।

हिमालय से जुड़ी हुई नदियों में हिमालय का हिम-जल स्वत: ही भरा हुआ होता है, वैसे ही ज्ञान, कर्म, भक्ति, ध्यान, जप, तप, प्रार्थना, यज्ञ, पूजा आदि योग साधनों के निरंतर अभ्यास से व्यक्ति जब वास्तव में परमात्मा में लीन हो जाता है तो उसके अंदर स्वत: ही आनंदस्वरूप परमात्मा का प्राकट्य होता है।

जहाँ आनंद है, वहीं उत्सव है। अस्तु साधक के हृदय में, साधक की आत्मा में आनंदस्वरूप परमात्मा के प्रकट होते ही उसका जीवन उत्सव सरीखा हो जाता है। उसके जीवन का पल-पल, क्षण-क्षण पर्व तथा त्योहार बन जाता है। उसके लिए तो फिर हर दिन होली और हर रात ही दीवाली हो जाती है।

इसलिए मानव जीवन के सर्वोपरि लक्ष्य भगवत्प्राप्ति हेतु अगणित राजकुमारों, सम्राटों, संतों, भक्तों और प्रेमियों ने अपना सर्वस्व त्यागा और अपनी समस्त भौतिक सुख-सुविधाओं का त्याग कर वे ईश्वर के मार्ग पर चल पड़े। वे यह जान चुके थे कि यह शरीर क्षणभंगुर है। सांसारिक सुख क्षणभंगुर हैं।

अज्ञान या माया के कारण ही हमें सांसारिक विषय-भोगों में सुख का क्षणिक आभास दीख पड़ता है। हमें लगता है कि हमारे मन में उठ रही वासनाओं, तृष्णाओं की पूर्ति से हमें सुख मिलेगा और हम उन तृष्णाओं की पूर्ति में लग भी जाते हैं, दीर्घकाल तक लगे भी रहते हैं, पर फिर भी तृष्णाएँ, वासनाएँ क्या कभी तृप्त हो पाती हैं ? नहीं। अनंत काल तक विषय-भोगों को भोगते रहने के पश्चात भी मानवीय मन में वासनाएँ-तृष्णाएँ अतृप्त ही बनी रहती हैं।

इस शाश्वत अतृप्ति के जाल से छूटने का पहला कदम यह मान लेना है कि हमें वास्तविक सुख-शांति-आनंद भोगों से नहीं, बल्कि सुख, शांति व आनंद के परम स्रोत परमात्मा से ही प्राप्त होंगे। अस्तु हमें भोगों के पीछे भागने के बजाय परमात्मा के मार्ग पर चल पड़ना चाहिए।

इंद्रियजन्य सुख वास्तविक सुख नहीं है। वास्तविक सुख ऐंद्रिक या शारीरिक नहीं होता। वास्तविक सुख तो आत्मा से ही निस्सृत होता है। अत: आत्मिक सुख ही वास्तविक सुख है। आत्मा में आह्लाद और आनंद उत्पन्न होने पर ही व्यक्ति वास्तव में आह्लादित और आनंदित हो सकता है और आत्मा में आह्लाद व आनंद उत्पन्न तभी होता

है, जब आत्मा में निरंतर आनंद के शाश्वत स्रोत परमात्मा का ध्यान किया जाए।

अस्तु आनंदप्राप्ति हेतु हमें भोगों के पीछे भागने के बजाय परमात्मा का संस्पर्श, सान्निध्य पाने का प्रयास करना चाहिए। परमात्मा के मार्ग पर चल पड़ने हेतु हमें विषय-भोगों से व संसार से मिलने वाले क्षणिक सुखों के दु:खद परिणाम का स्मरण होने के साथ-साथ उनके प्रति वैराग्य की भावना भी प्रबल होनी चाहिए। हमारे भीतर विषय-भोगों, सांसारिक सुखों के प्रति वैराग्य की भावना जितनी तीव्र होगी, हमारे मन में ईश्वर को पाने की लालसा भी उतनी ही तीव्र होती जाएगी।

संसार के प्रति हमारा प्रेम जितना कम होता जाएगा, ईश्वर के प्रति हमारा प्रेम उतना ही अधिक बढ़ता जाएगा। इस संबंध में अपने साधकों व शिष्यों को श्रीरामकृष्ण परमहंस कहा करते थे कि व्यक्ति कलकत्ता से बनारस की ओर जितना अधिक बढ़ता जाता है, कलकत्ता उतना ही पीछे छूटता जाता है और बनारस उतना ही नजदीक आता जाता है एवं बनारस पहुँचते ही कलकत्ता पूरी तरह पीछे छूट जाता है। उनके कहने का आशय यह था कि साधक का भगवान के प्रति प्रेम जितना अधिक बढ़ता जाता है, उसका संसार उससे उतना ही पीछे छूटता जाता है और इसी तरह अनवरत बढ़ते जाने से संसार पूरी तरह पीछे छूट जाता है और वह ईश्वर को प्राप्त कर लेता है।

अस्तु साधक को अविराम ईश्वर के मार्ग पर बढ़ते रहना चाहिए। हाँ! सत्य यह भी है कि अध्यात्म के मार्ग पर, ईश्वर के मार्ग पर चलते हुए, ईश्वर का स्मरण, ध्यान करते हुए साधक के अचेतन मन में सूक्ष्म रूप से व्याप्त जन्म-जन्मांतरों के संस्कार उसे बार-बार विषय-भोगों, वासनाओं, तृष्णाओं की प्राप्ति व पूर्ति से होने वाले सुख को बड़े ही आकर्षक रूप में उसके समक्ष प्रस्तुत करते हैं और उसे साधना-पथ से विचलित करते हैं।

कई कच्चे साधक संस्कारों द्वारा प्रस्तुत इस आकर्षण में उलझकर साधना से विचलित भी हो जाते हैं, पर जिनके मन में वैराग्य की अग्नि अखंड रूप से धधक रही होती है, जिनके मन में ज्ञान की अग्नि अनवरत धधक रही होती है, उस अग्नि के प्रचंड ताप में ये सारे संस्कार समूल भस्मीभूत हो जाते हैं और साधक का मार्ग निष्कंटक हो जाता है। तब ईश्वर के प्रति उसका प्रेम और भी प्रगाढ़ होता जाता है।

यहाँ समझने की बात यह है कि भगवान के प्रति हमारा प्रेम जितना प्रगाढ़ और प्रबल होता जाता है, हमारा मन भगवान में उतना ही एकाग्र होता जाता है। हमारा भगवद्ध्यान उतना ही अधिक गहरा होता जाता है। भगवान के प्रति हमारा अटूट विश्वास और प्रगाढ़, प्रबल प्रेम हमारे मन की चंचलता को दूर कर, उसे एकाग्र कर, उसे भगवान में लीन कर देता है।

फिर हजारों की भीड़ में, शोर-शराबे में बैठकर भगवद्ध्यान करने पर भी मन विचलित नहीं होता। विषय-भोगों के बीच या पास होने पर भी मन इधर-उधर नहीं भागता, वह विषयों का चिंतन नहीं करता। भगवान का स्मरण करते ही मन पूरी तरह से भगवान में लीन होने लगता है। इसलिए भगवान को पाने की तीव्र लालसा के साथ-साथ, भगवान के प्रति परम प्रेम व अटूट विश्वास का होना भी आवश्यक है।

साधक अपने सांसारिक, पारिवारिक, सामाजिक दायित्वों का निर्वहन भी सामान्य लोगों की तुलना में अधिक एकाग्रता व कुशलतापूर्वक करता है; क्योंकि वह अपने हर कार्य को ही ईश्वर का कार्य मानकर उसे पूजा की तरह पवित्र भाव से, निष्काम भाव से संपन्न करता है।

सफलता-असफलता, हानि-लाभ, जय-पराजय आदि द्वंद्वों से मुक्त हो वह स्वयं को प्रभु के हाथों का एक यंत्र मात्र मानते हुए अपने कर्त्तव्य

कर्म को करता जाता है। उसके लिए तो हर कर्म ही भगवत्कर्म बन जाता है।

तभी तो भगवान कृष्ण ने गीता (8.8) में कहा है—

अभ्यासयोगयुक्तेन चेतसा नान्यगामिना।
परमं पुरुषं दिव्यं याति पार्थानुचिन्तयन्॥

अर्थात हे पार्थ! यह नियम है कि परमेश्वर के ध्यान के अभ्यास रूप योग से युक्त, दूसरी ओर न जाने वाले चित्त से निरंतर चिंतन करता हुआ मनुष्य परम प्रकाश रूप दिव्य पुरुष को अर्थात परमेश्वर को ही प्राप्त होता है।

वहीं भगवान श्रीकृष्ण गीता (8.9,10) में कहते हैं कि जो पुरुष सर्वज्ञ, अनादि, सबके नियंता, सूक्ष्म से भी अतिसूक्ष्म, सबके धारण-पोषण करने वाले अचिंत्यस्वरूप, सूर्य के सदृश नित्य चेतन प्रकाश रूप और अविद्या से अति परे, शुद्ध सच्चिदानंदघन परमेश्वर का स्मरण करता है, वह भक्तियुक्त पुरुष अंतकाल में भी योगबल से भृकुटी के मध्य में प्राण को अच्छी प्रकार स्थापित करके फिर निश्चल मन से स्मरण करता हुआ उस दिव्य रूप परमपुरुष परमात्मा को ही प्राप्त होता है।

ईश्वर के मार्ग पर चल रहे साधकों में धैर्य और संयम का होना भी आवश्यक है। महर्षि पतंजलि ने अपने योग सूत्र (1.14) में साधकों को यही महत्त्वपूर्ण प्रेरणा दी है कि अपनी साधना को परिपक्व व पूर्ण बनाने हेतु साधक को चाहिए कि वह साधना में कभी अधीर न हो। वह साधना में कभी उकताए नहीं। वह यह दृढ़ विश्वास रखे कि उसके द्वारा किया जा रहा अभ्यास कभी व्यर्थ नहीं जा सकता।

निरंतर अभ्यास से मनुष्य निस्संदेह अपने लक्ष्य की प्राप्ति कर ही लेता है। हाँ! इसके साथ ही वह अपनी साधना के लिए कोई काल या अवधि निर्धारित न करे, बल्कि श्रद्धा, प्रेम, विश्वास के साथ आजीवन ही भगवत्प्राप्ति हेतु अभ्यास करता रहे।

साथ ही साधकों को इन शब्दों का भी स्मरण रखना चाहिए कि 'माँगो वह तुम्हें मिलेगा, ढूँढ़ो तुम उसे पाओगे, खटखटाओ और वह तुम्हारे लिए खुल जाएगा।' वास्तव में ये शब्द पूर्ण रूप से सत्य हैं, न आलंकारिक हैं और न ही काल्पनिक। इस सत्य की अनुभूति हम नित्य-निरंतर साधना के द्वारा अभीष्ट लक्ष्य की प्राप्ति हो जाने पर ही कर सकते हैं।

भगवत्प्राप्ति के आकांक्षी साधकों के लिए परमपूज्य गुरुदेव युगऋषि श्रीराम शर्मा आचार्य जी द्वारा प्रदर्शित, प्रकाशित उपासना-साधना और आराधना का पथ अधिक सुगम, सरल व पूर्ण पथ है।

उपासना के अंतर्गत अपने हृदयस्थ ज्योतिस्वरूप परमात्मा का नित्य ध्यान करना चाहिए अथवा प्रातःकालीन उदीयमान सूर्य का ज्योतिस्वरूप परमात्मा के रूप में ध्यान करना चाहिए।

साधना के अंतर्गत इंद्रिय संयम, विचार संयम, अर्थ संयम, समय संयम आदि का अभ्यास करना चाहिए। आराधना के अंतर्गत इस अखिल विश्व-ब्रह्मांड को परमात्मा की ही भौतिक अभिव्यक्ति मानकर जन-जन की सेवा करनी चाहिए; क्योंकि जीव सेवा ही शिव सेवा है। नर सेवा ही नारायण सेवा है। मानव सेवा ही माधव सेवा है।

उपासना-साधना और आराधना के निरंतर अभ्यास से चित्तवृत्तियों का जो प्रवाह परंपरागत संस्कारों के बल से या प्रभाव से सांसारिक भोगों की ओर चल रहा है, वह धीरे-धीरे सांसारिक भोगों से विमुख होकर ईश्वर की ओर प्रवाहमान हो जाता है।

साधक की चित्तवृत्तियों का तब पूर्णतः निरोध हो जाता है और उसे अपनी आत्मा में सत्-चित्-आनंदस्वरूप परमात्मा की अनुभूति होती है। ❑

आत्मबल—जीवन की सर्वोपरि संपदा

आत्मबल जीवन की सर्वोपरि संपदा है। यह प्रत्यक्ष कल्पवृक्ष है, जिसकी छाँहतले हमारी हर इच्छा, मनोकामना पूर्ण हो जाती है। यह सच्चा पारस है, जिसके स्पर्श से लोहे जैसा क्षुद्र अस्तित्व भी सोने जैसा बेशकीमती बन जाता है। जिसके पास आत्मबल आ जाता है, उसके पास किसी चीज की कमी नहीं रह जाती।

ईश्वरकृपा के रूप में साधक को एक ही पुरस्कार मिलता है और वह है आत्मबल। गायत्री महामंत्र में सविता देवता के जिस देवस्वरूप भर्ग को वरण करने की याचना की गई है, वह ब्रह्मतेज आत्मबल ही है। जिसे यह दैवी वरदान मिल गया, समझो उसका जीवन धन्य हो गया। जो इससे वंचित रह जाता है, वह प्रचुर सुविधा-सामग्री एवं सहयोग होते हुए भी भय, चिंता, निराशा, आशंका और बेचैनी से त्रस्त रहता है।

अज्ञानवश व्यक्ति अपने स्वरूप, सत्ता, शक्ति एवं वर्चस्व का महत्त्व नहीं समझ पाता। आत्मबोध के अभाव में व्यक्ति अज्ञानी ही रह जाता है। जबकि यदि हमारा वास्तविक स्वरूप आत्मा है, तो अपने भीतर आत्मतत्त्व विद्यमान होना चाहिए और फिर उसका स्वाभाविक गुण आत्मबल भी होना चाहिए।

इस तरह आत्मबल हमारे भीतर ही विद्यमान रहता है, इसे कहीं बाहर से नहीं लाना पड़ता। इसे उभारना, निखारना व सँभालना भर पड़ता है। इसके जागरण एवं विकास के प्रयास को ही साधना कहा जाता है। इस प्रक्रिया में व्यक्ति अपने परम शक्तिशाली स्वरूप की अनुभूति की ओर अग्रसर होता है। अभी अपने चारों ओर जो दीन-हीन, क्षुद्र-दयनीय अवस्था में पड़ा हुआ वह अनुभव करता है, इसे अपने ही कर्तृत्व की उपज मानते हुए इन्हें मकड़ी के जाले की तरह समेटता है।

उसे यह समझ आता है कि उसकी वर्तमान दशा अपने ही कर्मों, मान्यताओं व स्व-धारणा के फल व परिणाम हैं। जिस भव-बंधन, जंजीरों में वह स्वयं को जकड़ा अनुभव करता है, यह सब कुछ माया नहीं, बल्कि अपनी ही प्रतिगामी मान्यताओं की प्रतिक्रिया भर है। अपने गुण, कर्म, स्वभाव में वांछित परिवर्तन लाते हुए वह इनसे बाहर आ सकता है।

यह प्रकारांतर में आत्मबल के जागरण की प्रक्रिया है, जिसके प्रकाश में नगण्य-सा मानव जीवन विभूतिवान एवं बहुमूल्य बन जाता है। इसके आधार पर व्यक्ति अनुकरणीय उदाहरण प्रस्तुत कर काल के भाल पर अपनी अमिट छाप छोड़ता है और नररत्न के रूप में मानवीय इतिहास के पन्नों पर अपनी अनुकरणीय उपस्थिति दर्ज करता है। इसके मूल में आत्मबल की प्रधानता ही कारण रहती है, जो आत्मचेतना की भूमिका में जाग्रत होने का शुभ परिणाम रहती है।

'मैं आत्मा हूँ,' यदि यह मान्यता गहन अंतरंग में प्रवेश कर जाए। देह मन से ऊपर उठी हुई ईश्वरीय पवित्रता एवं महानता से युक्त आत्मा को अपने जीवन का आधार बनाया जाए, अपनी गतिविधियों को आत्मा के कर्त्तव्य और गौरव के अनुरूप बनाया जाए, तो इस भावना की प्रतिध्वनि रोम-रोम में गूँज उठेगी और नए सिरे से विचार

उठेगा कि जीवन का लक्ष्य, कर्त्तव्य और गंतव्य क्या है ? इनका उत्तर कठिन नहीं, कहीं बाहर नहीं, बल्कि अपने ही अंत:करण में मिलेगा।

आत्मचेतना की भूमिका में अंत:करण जाग पड़े तो, यह महानतम सौभाग्य कहा जाएगा। ईश्वर का सबसे बड़ा अनुग्रह, देवताओं का सबसे बड़ा वरदान, गुरुजनों का सबसे बड़ा आशीर्वाद यही हो सकता है। मनुष्य जीवन की, इस नर तन की सार्थकता इसी महान जागरण पर अवलंबित है।

जो इस भूमिका में जगा, उसी ने अपने अंतरंग और बहिरंग जीवन को उत्कृष्टता के ढाँचे में ढाला और उसी की गतिविधियाँ आदर्शवादिता का महान प्रकाश बनकर इतिहास के पृष्ठों पर चमकीं। स्वाति बूँद पड़ने पर सीप में मोती, केले में कपूर, बाँस में वंशलोचन, सर्प में मणि उत्पन्न होने की बात यहीं चरितार्थ होती है।

इस तरह आत्मचेतना की भूमिका में जगा हुआ मनुष्य नर से नारायण बन जाता है, जीव से शिव की अवस्था को पाता है। इस भूमिका में जागा हुआ मानव अनुभव करता है कि वह शरीर व मन नहीं, अविनाशी आत्मा है।

वह चिंतन करता है कि मुझे यह सुरदुर्लभ जीवन शरीर और मन की लपक बुझाते रहने के लिए नहीं, बल्कि आत्मा के गौरव को अभिव्यक्त करने के लिए मिला है व उसके एक-एक पल का सदुपयोग मुझे करना है।

सामान्यत: चिरपरिचित, चिर अभ्यस्त पुरानी मान्यताओं, गतिविधियों के प्रति मोह-ममता; आत्मिक प्रगति, जीवन-उत्कर्ष के विरोधी बने हुए होते हैं। पुराने दोष-दुर्गुणों, अवांछनीय क्रियाकलापों, मोह-ममता से यदि न निपटा जाए, तो व्यक्ति पुराने ढर्रे पर ही लुढ़कता रहता है। चिर अभ्यास की अवस्था बनी रहती है। अनीति और पाप का दौर चलता रहता है। जीवात्मा अर्जुन की तरह दुविधा एवं विषाद की अवस्था में पड़ी रहती है, जहाँ गांडीव नीचे पड़ा रहता है व अपने निम्न स्व से कैसे लड़ा जाए, वह सूझ नहीं पड़ता। धर्मसंकट की घड़ी में आत्मा महाभारत के अर्जुन की स्थिति में खड़ी हो जाती है।

यहीं साधना-समर व आंतरिक संघर्ष की स्थिति साधक को उबारती है, तारती है। आत्मभूमिका में जाग्रत व्यक्ति अपनी वर्तमान गतिविधियों पर दृष्टि डालता है, तो उसे यह निरर्थक बालक्रीड़ा लगती है। जरा-सा पेट भरा, थोड़ा-सा परिश्रम कर गुजर-बसर की संभावना, फिर अधिकाधिक धन कमाने का लोभ, कुत्ते की तरह सूखी हड्डी चबाने, जबड़ों का रक्त पीकर प्रसन्नता, इंद्रिय-वासना के लिए जीवन तत्त्व को निचोड़ने में कौन-सी बुद्धिमत्ता ?

इस बोध के साथ साधक अपने जाग्रत संकल्प के साथ प्रचंड साधनात्मक पुरुषार्थ में प्रवृत्त होता है और प्रारब्ध की जटिल चट्टान को भेदते हुए आत्मजागरण की भूमिका में प्रतिष्ठित होता है, उस आत्मबल का अर्जन करता है, जिसके साथ फिर उसके लिए कुछ भी असंभव नहीं रहता। ❑

महाभारत का युद्ध समाप्त हुआ। अर्जुन भगवान श्रीकृष्ण के चरणवंदन करते हुए बोले—"भगवन्! आपके कारण हमारी विजय हुई।" श्रीकृष्ण ने उत्तर दिया—"नहीं धनंजय! तुम्हारी विजय इसलिए हुई; क्योंकि धर्म तुम्हारे साथ था।" श्रेष्ठताएँ और सफलताएँ धर्म का ही साथ देती हैं, तभी तो अति बलशाली रावण वानरों की सेना के आगे टिक न सका। मनुष्य भी जब धर्म और न्याय के पथ पर अग्रसर होता है तो लाख प्रतिकूलताओं के बाद भी श्रेय का वरण स्वत: ही करता है।

इस युग के अनुपम जादूगर

प्रगति का पथ अवरुद्ध करने और असहनीय आंतरिक उद्वेगों का जन्म दुर्बुद्धि से ही होता है। यदि आत्मनिरीक्षण और आत्मपरिष्कार की विद्या हाथ लग जाए तो प्रसन्नता और प्रफुल्लता का हँसता-हँसाता जीवन जिया जा सकना हर किसी के लिए संभव हो सकता है।

विपन्न परिस्थितियों में भी मानसिक संतुलन को स्थिर रखने की बुद्धिमत्ता कैसे स्थिर व सुदृढ़ रखी जा सकती है, इसका प्रयोग अपने जीवनक्रम में प्रयुक्त करके गुरुदेव आज के दुर्बुद्धि संत्रस्त युग का मार्गदर्शन करने आए।

गहराई से तलाश किया जाए तो उनके सामने अधिक-से-अधिक उद्विग्न दिखने वाले व्यक्ति की तुलना में भी हजार गुनी ज्यादा उलझनें, समस्याएँ और कठिनाइयाँ उपस्थित रहती थीं।

दुनिया की विचित्रता में कुछ संदेह नहीं। वे लाखों-करोड़ों व्यक्तियों से संबद्ध थे। इनमें से अधिकांश व्यक्ति उसी ढाँचे में ढले थे, जैसा कि सर्वत्र दिखता है। अपने लाभ के लिए दूसरों का शोषण करने में किसी को संकोच नहीं। जो आता सो लेने की बात ही करता। प्रतिदान के रूप में लोक-मंगल के लिए कुछ करने की बात कही जाती है तो भी लोग अनसुनी कर देते।

आशीर्वाद-वरदान के रूप में तप-पुण्य प्राप्त करके ही लोग संतुष्ट न रहते, मुफ्त भोजन, निवास और दाँव लग जाए तो कभी न लौटने वाले उधार के नाम पर भी कुछ किसी बहाने प्राप्त कर ले जाते थे। संपर्क में आने वाले लोगों का वर्गीकरण किया जाए तो दो-तिहाई ऐसे ही मिलेंगे। आत्मकल्याण और लोक-मंगल के लिए कुछ मार्गदर्शन प्राप्त करने और देश, धर्म, समाज, संस्कृति के पुनरुत्थान में योगदान करने की बात तो कोई विरले ही करते थे।

इनकी संख्या एक-तिहाई से अधिक तो होती ही न थी। गुरुदेव के एक राजनीतिक मित्र उन्हें सदा ताना दिया करते थे कि आप शिष्यों नहीं जेबकतरों से घिरे रहते हैं। वे मुस्करा भर देते और कहते इन जेबकतरों में से ही शिष्य पैदा करना मेरा काम है। वस्तुतः उनकी बात सच निकली।

मनोकामना पूर्ण कराने की इच्छा से गुरुदेव का अनुदान मात्र प्राप्त करने के लिए जो लोग आए थे, वे उनके व्यक्तित्व और कर्तृत्व से ऐसे प्रभावित हुए कि क्रमशः सच्चे अर्थों में उनके अनुयायी ही बनते चले गए।

स्वार्थपूर्ति का प्रलोभन देकर पास बुलाना और परमार्थपरायण बनाकर वापस भेजना, यह जादू अन्यत्र शायद ही कहीं देखा गया हो।

उनके अंतरंग मित्र उनका मूल्यांकन करते हुए अक्सर 'जादूगर' की उपाधि दिया करते थे। सचमुच वे इस युग के अनुपम जादूगर ही थे। कितनों को किस रूप में पकड़ा और उन्हें क्या-से-क्या बना दिया, इसका लेखा-जोखा यदि इकट्ठा किया जाए तो निस्संदेह उन्हें बाजीगरी का मुकुटमणि ही कहा जाएगा।

मिट्टी दिखाकर झूठ-मूठ रुपया बनाने का तमाशा करने वाले बाजीगर उनके इस चमत्कार की क्या तुलना करेंगे, जिसके द्वारा पारस की तरह लोहे के सड़े-गले टुकड़ों को चिरस्थायी बहुमूल्य स्वर्ण राशि में बदलकर विश्वमानव की झोली को अपार संपदा से भर दिया। ❑

चेतना की शिखर यात्रा–245

प्रज्ञावतार के लीला केंद्र

विगत अंक में आपने पढ़ा कि पूज्य गुरुदेव द्वारा शक्तिपीठों की स्थापना का अभियान चलाया जा रहा था। शक्तिपीठों के कुशल संचालन के महत्त्वपूर्ण कार्य को संपन्न कराए जाने के उद्देश्य से पूज्यवर ने अपने संरक्षण में तैयार किए चुनिंदा उत्कृष्ट साधकों को न केवल अपने पास बुलाया, वरन उन समर्थों के समक्ष शक्तिपीठों के रूप में स्थापित शक्तिकेंद्रों की जनकल्याण में महती भूमिका को भी उजागर करते हुए कहा कि तीर्थ या शक्तिपीठों का स्वरूप ऐसा होना चाहिए कि आत्मिक दृष्टि से अत्यंत सामान्य व्यक्ति को भी उत्कर्ष की प्रेरणा मिले। शक्तिपीठों के रहस्य को समझाते हुए उन्होंने प्रजापति दक्ष के यज्ञ विध्वंस और शिव द्वारा सती के शव को कंधे पर लेकर पृथ्वी पर विचरण और शक्ति के अंगों के कट–कटकर गिरने तथा उन–उन स्थानों पर शक्तिपीठों की स्थापना का वर्णन करते हुए कहा कि इस रूपक से एक आध्यात्मिक सत्य को उद्घाटित किया गया है। शिव अर्थात कल्याण के अधिष्ठाता देव और सती अर्थात उस सत्ता को व्यक्त करने वाली शक्ति। समाज में जब कुछ प्रभावशाली लोग शिव और शक्ति की अवमानना करने लगते हैं तो संतुलन डगमगाने लगता है और यह समाज में अव्यवस्था व अराजकता को जन्म देता है, जिसका निवारण शक्ति के शुभ अथवा कल्याण के संयोग से ही संभव है, जो शक्तिपीठों की स्थापना में निहित उद्देश्य है। आइए पढ़ते हैं इसके आगे का विवरण ....

विधि–व्यवस्था का शोध

गुरुदेव ने जिन साधकों को अलग–अलग समय में इन सिद्ध क्षेत्रों की मूल विधि–व्यवस्था के अध्ययन के लिए चुना था, उनमें कुछ अपना काम पूरा कर आने लगे थे। ऐसे साधकों को करीब सात– आठ वर्ष पहले अलग–अलग क्षेत्रों में भेजा गया था। संसिद्धि के लिए प्राचीन और परंपरागत सिद्ध क्षेत्रों का अध्ययन आवश्यक नहीं था।

गुरुदेव ने उन स्थानों और सिद्ध तरंगों के संसर्ग में कुछ साधकों को भेजा तो इसलिए कि नए शक्तिपीठों का विधान संपन्न करने वाली प्रतिभाओं को निखारा जा सके।

शक्तिपीठों के संबंध में गुरुदेव ने भव्य भवन बनाने की संकल्पना नहीं रखी थी। गायत्री परिवार के अधिकांश कार्यकर्त्ता सामान्य आर्थिक स्थिति अथवा मध्यम वर्ग के रहे हैं। एक आना–दस पैसा और एक रुपया अथवा एक मुट्ठी अनाज प्रतिदिन निकालकर नए युग का अभिवादन–आराधन करने में जुटे हैं।

इसलिए निर्माण के बजाय वहाँ से चल रहे कार्यक्रमों और प्रेरणा–प्रवाहों को जीवंत बनाने पर जोर था। निर्माण भव्य हों या बाद में निखरते–उभरते रहें तो स्वागत है, लेकिन वहाँ के प्रवाह प्राणवान रहें यह महत्त्वपूर्ण है।

उन्होंने कहा कि गायत्री परिवार के सूत्रसंचालक (परिजन उस सत्ता को दादा गुरुदेव के नाम से पुकारते हैं) ने तय किया है कि चौबीस शक्तिपीठों की स्थापना की जाए। चौबीस की यह संख्या तो

आरंभ है। आगे तो चौबीस सौ और चौबीस हजार या उससे भी ज्यादा बड़ी संख्या तक पहुँच सकता है। आरंभ में चौबीस शक्तिपीठ उन पुण्य क्षेत्रों में बनाए जाएँगे, जहाँ पहले से ही तीर्थों की मान्यता रही है।

गुरुदेव ने उन तथ्यों की ओर भी इंगित किया था, जिनके कारण इन स्थानों को तीर्थों की मान्यता मिली हुई थी। वे तथ्य और तत्त्व अब भी किसी-न-किसी रूप में विद्यमान हैं। उन स्थानों पर शक्तिपीठों की स्थापना का उद्देश्य तीर्थों के जीर्ण-शीर्ण हो रहे प्राणतत्त्व को प्रखर बनाने के साथ नई ऊर्जा का प्रवाह उत्पन्न करना भी था।

सन् 1979 के चैत्र नवरात्र के समय जिन चौबीस शक्तिपीठों का संकल्प घोषित किया गया उनके क्षेत्र और नाम इस प्रकार हैं—उत्तर प्रदेश में (1) प्रयाग (2) काशी (3) अयोध्या (4) चित्रकूट (5) बदरीनाथ; बिहार में (6) गया (7) वैजनाथ धाम; उड़ीसा में (8) जगन्नाथपुरी; मध्य प्रदेश में (9) उज्जैन (10) ओंकारेश्वर (11) अमरकंटक; गुजरात में (12) अंबाजी, (13) डाकौर जी (14) गिरनार (15) जूनागढ़ (16) द्वारका (17) सोमनाथ; हरियाणा में (18) कुरुक्षेत्र; राजस्थान में (19) नाथद्वारा (20) पुष्कर; जम्मू-कश्मीर में (21) वैष्णो देवी; महाराष्ट्र में (22) नासिक; दक्षिण भारत में (23) रामेश्वरम् (24) तिरुपति बालाजी और असम में (25) कामाख्या गुवाहाटी।

जिस समय स्थानों और शक्तिपीठों की योजना घोषित की गई, उसी समय उनका स्वरूप भी बता दिया गया था। सामान्य तौर पर इन स्थापनाओं को तीन मंजिला रखा जाना था।

पहली मंजिल पर मुख्य पीठ। वहाँ पर गायत्री माता की भव्य प्रतिमा और दीवारों पर संगमरमर की गायत्री महाशक्ति के चौबीस स्वरूपों की प्रतिमाएँ। उनका परिचय देने और मर्म समझाने के लिए हर समय एक कार्यकर्त्ता उपलब्ध।

दूसरी मंजिल में सत्संग भवन और परामर्श कक्ष का प्रावधान रखा गया। शक्तिपीठ आने वाले जिज्ञासुओं को गायत्री विद्या का परिचय देंगे, जिज्ञासुओं का समाधान करेंगे। उनकी निजी, पारिवारिक और सामाजिक समस्याओं का हल भी सुझाएँगे।

इस स्तर के समाधान के लिए कार्यकर्त्ताओं का अपना व्यक्तित्व भी उच्च स्तर का होना चाहिए। वैसा आत्मविश्वास भी हो। कदाचित् वह नहीं हो तो आगंतुकों की समस्याएँ सुनकर उनके अनुरूप युगसाहित्य प्रस्तुत कर दिया जाए। इन नए तीर्थों-शक्तिपीठों की व्यवस्था और संचालन के लिए आवश्यकतानुसार परिव्राजकों की नियुक्ति की जानी थी।

पहला शक्तिपीठ

घोषणा हुई तो शांतिकुंज में उपस्थित क्षेत्र से आए गायत्री परिवार के कार्यकर्त्ताओं में से कुछ ने तय किया कि आए हैं तो यहीं संकल्प भी ले लिया जाए। एक आकर्षण यह भी था कि स्थापना क्रम में पहला संकल्प होगा। कह सकेंगे कि हमने गुरुदेव के आह्वान पर सबसे पहले पहल की। नाम बताए बिना इतना ही जान लेना पर्याप्त होगा गुरुदेव ने इस तरह की प्रतिस्पर्धा को निरुत्साहित किया।

ओडिशा में जगन्नाथपुरी के एक कार्यकर्त्ता हरिहर महापात्र अपने चार साथियों के साथ उस नवरात्र शिविर में आए थे। शक्तिपीठों की घोषणा सुनते ही उन्होंने सप्त सरोवर जाकर पोस्ट आफिस से 'पुरी' शाखा के कुछ कार्यकर्त्ताओं से संपर्क साधने की सोची। संपर्क शायद कर भी लिया और अगले दिन व्रतबंध लेने, कलावा बँधवाने का अनुरोध किया तो गुरुदेव ने आशीष दिए।

व्रतबंध के बाद हरिहर ने कहा—''पूज्यवर हम लोगों को सबसे पहले संकल्प लेने का सौभाग्य मिला है न।''

गुरुदेव ने कहा—''नहीं बेटा और लोग भी व्रतबंध लेकर हाल ही में गए हैं।'' सुनकर हरिहर और उनके साथ आए कार्यकर्त्ता कुछ उदास से होते दिखाई दिए।

उन्हें उदास देखकर गुरुदेव ने कहा—''यह तो भगवान का काम है बेटा। प्रत्येक व्यक्ति और साधक अपने स्थान पर प्रथम ही है। किसी-की-किसी से प्रतिस्पर्धा नहीं है। आगे आना है तो अपने आप से ही आगे आना है। एक बड़े जहाज में सवार होकर सागर पार कर रहे हैं तो कौन आगे और कौन पीछे। जाओ संकल्प लिया है, उसे पूरा करो।''

गायत्री शक्तिपीठों का विचार जनसामान्य में पहुँचने लगा तो तरह-तरह की कल्पनाएँ और अपेक्षाएँ होने लगीं। गायत्री परिवार के ही कुछ कार्यकर्त्ताओं को लगने लगा था कि परंपरागत स्थापनाओं की तरह ही यहाँ भी साधना-उपासना के विशिष्ट प्रयोग होंगे। लोग दर्शन करने जाएँगे, अपनी कामनाएँ दोहराएँगे और गुरुदेव के आशीर्वाद से तुरंत या कुछ देर बाद वे पूरी हो जाएँगी।

इन अपेक्षाओं का संशोधन भी नहीं किया जा सकता था, किस-किस को समझाया जाए। शक्तिपीठों के संबंध में तांत्रिक और प्रचंड योग-साधनाओं का केंद्र होने की मान्यता भी प्रचलित है। शांतिकुंज आने वाले कार्यकर्त्ता यहाँ के वरिष्ठ कार्यकर्त्ताओं से या कभी-कभार तो गुरुदेव से ही स्वयं पूछ लिया करते थे।

तांत्रिकों का मेला

असम में कामाख्या शक्तिपीठ जा चुके मथुरा के कार्यकर्त्ता अवतार नारायण के मन में भी इसी तरह के बिंब बनने लगे। कामाख्या शक्तिपीठ की यात्रा उन्होंने पंद्रह-बीस साल पहले की थी। तब वे युवा थे और अंबुवाची पर्व पर गुवाहाटी से पैदल ही कामाख्या गए थे।

अंबुवाची पर्व ज्येष्ठ या आषाढ़ मास में बृहस्पति के विशिष्ट ग्रहयोग बनने पर मनाया जाता है। उस समय यहाँ तांत्रिकों का विराट मेला-सा लगता है। दूर-दूर से तांत्रिक आते हैं और साधनाएँ करते हैं। तीन दिन के इस आयोजन में मंदिर के कपाट बंद रहते हैं। कोई भी भीतर नहीं जा सकता, यहाँ तक कि पुजारी भी नहीं। मंदिर में महाशक्ति की योनिमुद्रा स्थापित है।

परंपरागत मान्यता है और श्रद्धालु विश्वास भी करते हैं कि तीन दिनों में भगवती रजस्वला होती हैं। शक्ति के विग्रह रूप से रज प्रवाह निकलता है और गर्भगृह में रखे गए सफेद वस्त्र उस रज से रक्तिमवर्ण के हो उठते हैं। कपाट बंद होने से पहले श्रद्धालु जन पुजारियों से अनुनय-विनय कर कुछ वस्त्र गर्भगृह में रखवा देते हैं। तीन दिन पूरे होने के बाद द्वार खुलता है तो रज से सने रँगे वस्त्र प्रसाद रूप में साथ ले जाते हैं। मंदिर के अधिकारी स्वयं भी कुछ वस्त्र व्यवस्था की ओर से रखवा देते हैं। उन्हें भी आशीर्वाद के रूप में वितरित किया जाता है।

अंबुवाची पर्व पर आए तांत्रिकों का उद्देश्य इन सिद्ध और आशीर्वाद रूप वस्त्रों को प्राप्त करना तो होता ही है, इस क्षण मुहूर्त का लाभ उठाकर सिद्धियाँ, दिव्य शक्तियाँ अर्जित करना भी होता है। पता नहीं कितने लोगों को सिद्धियाँ मिलती हैं और कितनों को नहीं, किंतु इन दिनों सामान्य जनों की, श्रद्धालुओं की संख्या कई गुना बढ़ जाती है। उनमें से कई तो इस स्थान पर अपने आप को उपस्थित पाकर ही गद्‌गद हो उठते हैं।

कामाख्या शक्तिपीठ को सर्वप्रधान पीठ माना जाता है। अवतार नारायण जी ने इस पीठ की यात्रा

खास उमंग के साथ की थी, लेकिन वे बताया करते थे कि वहाँ पहुँचकर निराशा ही हुई। मंदिर कूच बिहार के राजा विश्वसिंह और शिवसिंह ने बनवाया था।

करीब तीन सौ वर्ष पुराने इस सिद्धपीठ की दीवारें और छतें उस यात्रा के समय मरम्मत को तरसने लगी थीं। देवस्थान निश्चित ही पुराना है। अपने समय में देवी के आराधक रहे कलाचंद राय ने जातीय भेदभाव के कारण सताए जाने से कुपित होकर धर्मांतरण कर लिया था। वह अपने इष्ट के प्रति अगाध श्रद्धा रखता था, लेकिन जातीय भेदभाव और सवर्णों से मिले तिरस्कार ने उसे आहत कर दिया।

अपमान और तिरस्कार का दंश इतना गहरा चुभा कि उसने हिंदू धर्म छोड़कर इसलाम अपना लिया। वह कलाचंद राय से काला चांद खाँ बनकर धर्मस्थलों पर कहर ढाने लगा। पुरी का जगन्नाथ मंदिर, कोणार्क का सूर्य मंदिर और रास्ते में पड़ने वाले देव स्थानों को खंडित या नष्ट करते हुए वह कामाख्या शक्तिपीठ तक पहुँचा। सन् 1564 में उसने मंदिर तुड़वा दिया। बाद में कूच बिहार के राजाओं ने इसका फिर से निर्माण कराया।

मंदिर के पास ब्रह्मपुत्र नदी के बीच स्थित चट्टानी टापू पर शिव का मंदिर है। उस विग्रह को कामाख्या का भैरव या प्रहरी समझा जाता है। आश्विन और चैत्र के नवरात्रों में भी इस क्षेत्र में उत्सव आयोजनों की भरमार रहती है। यात्रा के समय अवतार नारायण जी को कई तरह के अनुभव हुए।

उनमें सुखद कम थे और त्रासद ज्यादा। त्रासद इसलिए कि अंबुवाची पर्व पर तांत्रिकों के कारण क्षेत्र का वातावरण वीभत्स् हो उठता है। सात्त्विक और सरल प्रकृति के लोग उस वातावरण में आह्लादित होने के स्थान पर खिन्न ही होते हैं। जिन दिनों अवतार नारायण जी ने कामाख्या की यात्रा की, उन दिनों एक महिला को शव-साधना करते देखा। यह शव उसकी एक शिष्य साधिका के पति का था।

उस साधिका ने अपने पति को षड्यंत्र रच कर मार दिया था। लालच यह था कि शव-साधना के बाद उसे अपने घर के पीछे गड़े खजाने का पता चल जाएगा। खजाने का अता-पता तो नहीं चला, पुलिस ने उस महिला और तांत्रिक को जरूर गिरफ्तार कर लिया। (क्रमशः)

जीवन होम कर देने वाले कई ऐसे वीर क्रांतिकारी हुए हैं, जिन्होंने भारत के गौरव को ऊँचाइयों तक पहुँचाने में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की। राँची के तिहतु ग्राम में एक आदिवासी परिवार में जन्मे बिरसा मुंडा का नाम भी उन महान विभूतियों में लिया जा सकता है। 19 वर्ष की युवा अवस्था में उन्होंने अँगरेजों के विरुद्ध लगान माफी के लिए आंदोलन प्रारंभ किया और इसी कारण उन्हें हजारीबाग जेल में डाल दिया गया। बिरसा 25 वर्ष की छोटी उम्र में ही इस संसार से विदा हो गए, पर अकालपीड़ित किसानों के हितों और देशवासियों के गौरव की रक्षा के लिए उन्होंने जो संघर्ष किया, उसके लिए उन्हें झारखंड निवासी 'धरती बाबा' के नाम से पुकारते हैं। भारतीय स्वतंत्रता की कहानी ऐसे ही वीर नौजवानों की कहानी है।

विपश्यना का प्रभाव

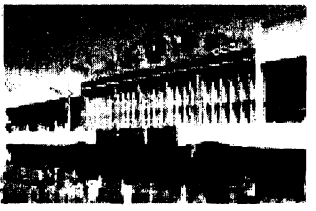

आधुनिक दुनिया में समाज का एक बहुत बड़ा वर्ग व्यावसायिक जगत् से जुड़ा हुआ है। व्यावसायिक क्षेत्र में कार्य करने वाले कर्मचारियों को सदैव चुनौतीपूर्ण स्थितियों से गुजरना पड़ता है। ये चुनौतियाँ बाहरी और आंतरिक, दोनों तरह की होती हैं; जैसे—लंबे समय तक एक ही स्थिति में बैठना, निर्धारित समय से ज्यादा देर तक कार्य करना, समय पर कार्य पूरा करने का दबाव, अतिरिक्त कार्यभार, दिनचर्या की अस्त-व्यस्तता, पसंद का कार्य न होना, अपेक्षाएँ पूरी न होना, प्रतिस्पर्धा, तनख्वाह कम मिलना, भेदभाव, साथियों-सहयोगियों का व्यवहार आदि।

यदि इन अंतः-बाह्य चुनौतियों का समुचित समाधान समय से न किया जाए तो इनका परिणाम अनेक शारीरिक और मानसिक समस्याओं के रूप में सामने आता है। ऐसी समस्याओं से बचाव एवं प्रबंधन की आवश्यकता को ध्यान में रखते हुए देव संस्कृति विश्वविद्यालय के योग एवं स्वास्थ्य विभाग के अंतर्गत एक महत्त्वपूर्ण शोध अध्ययन का कार्य संपन्न किया गया है।

यह शोध अध्ययन वर्ष-2016 में शोधार्थी संदीप कुमार सिंह द्वारा श्रद्धेय कुलाधिपति डॉ० प्रणव पण्ड्या जी के विशेष संरक्षण एवं निर्देशन में पूर्ण किया गया है। इस अध्ययन का विषय है—**'इफिकेसी ऑफ विपश्यना ऑन दि ऑक्यूपेशनल स्ट्रेस एंड लाइफ सैटिस्फेक्शन अमंग कॉर्पोरेट एम्प्लायज।'**

इस प्रयोगात्मक एवं विवेचनात्मक विधि पर आधारित शोध के प्रयोग हेतु शोधार्थी द्वारा जोधपुर, राजस्थान से 120 कार्पोरेट कर्मचारियों का चयन किया गया। ये कर्मचारी शहर के कार्पोरेट क्षेत्र से जुड़े विभिन्न संस्थानों, संगठनों, व्यावसायिक व शैक्षणिक केंद्रों में कार्यरत थे। इनमें 97 पुरुष एवं 23 महिला कर्मचारी सम्मिलित किए गए, जिनकी न्यूनतम शैक्षणिक योग्यता इंटरमीडिएट थी और आयु 18 से अधिक थी।

प्रयोग प्रारंभ करने से पूर्व शोधार्थी द्वारा सभी चयनितों का शोध उपकरणों के माध्यम से स्वास्थ्य परीक्षण किया गया। स्वास्थ्य परीक्षण के लिए जिन उपकरणों को प्रयुक्त किया गया, वे हैं—ऑक्यूपेशनल स्ट्रेस इन्डेक्स (OSI) जिसे डॉ० ए० के० श्रीवास्तव एवं डॉ० ए० पी० सिंह द्वारा निर्मित किया गया है तथा लाईफ सेटिस्फेक्शन स्केल (LSS) जिसे क्यू० जी० आलम एवं राम जी श्रीवास्तव द्वारा विकसित किया गया है।

प्रारंभिक परीक्षण के उपरांत प्रथम प्रायोगिक समूह में सम्मिलित लोगों को शोधार्थी द्वारा एक माह की अवधि तक विपश्यना ध्यान का नियमित एक घंटे अभ्यास कराया गया तथा द्वितीय प्रायोगिक समूह के 40 लोगों को दो माह की अवधि तक नियमित एक घंटे विपश्यना ध्यान का अभ्यास कराया गया।

प्रयोग की अवधि पूर्ण होने पर पुनः शोध उपकरणों के माध्यम से सभी चयनितों का स्वास्थ्य परीक्षण किया गया। दोनों परीक्षणों से प्राप्त आँकड़ों का सांख्यिकीय विश्लेषण करने पर परिणामों के रूप में शोधार्थी ने यह पाया कि विपश्यना ध्यान का व्यावसायिक कर्मचारियों के व्यावसायिक तनाव स्तर तथा जीवन संतुष्टि की भावना पर सार्थक एवं सकारात्मक प्रभाव पड़ता है।

शोध के परिणामों की विवेचना में यह स्पष्टतया बताया गया कि इस तकनीक में श्वास के माध्यम से शारीरिक और मानसिक संवेदना के प्रति सजगता उत्पन्न होती है, जिसका सीधा असर व्यावसायिक तनाव पर पड़ता है।

श्वास गति पर एकाग्रता एवं सजगता से शरीर के साथ-साथ मनोवैज्ञानिक और भावनात्मक स्तर पर भी संवेदनाओं में संतुलन, स्थिरता और विश्रांति की उपलब्धि होती है। तनाव को कम करने में मानसिक और भावनात्मक अवस्था की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है, अत: यह योगाभ्यास व्यावसायिक तनाव को कम करने के साथ ही शरीर, मन और भावना के स्तरों में संतुलन और सजगता उत्पन्न करने का लाभ भी प्राप्त कराता है।

वैज्ञानिक रीति से विश्लेषण करने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि विपश्यना ध्यान का अभ्यास हमारे अंत:स्रावी तंत्र को संतुलित करता है, जिसके फलस्वरूप मन और भावनाओं के स्तर पर स्पष्टता और सकारात्मकता विकसित होती जाती है और आंतरिक द्वंद्व एवं तनाव में कमी आती जाती है। इस ध्यान में श्वास-प्रश्वास का संतुलन और लयबद्धता का प्रभाव तंत्रिका तंत्र को प्रभावित कर गंभीर तनावपूर्ण स्थिति से बाहर निकलने में अत्यंत महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

इस अध्ययन के परिणामों के आधार पर शोधार्थी का मत है विपश्यना ध्यान से फेफड़ों की कार्यक्षमता में वृद्धि होती, जिसका सीधा असर शारीरिक स्वास्थ्य पर पड़ता है, मस्तिष्क और बायोकेमिकल कार्यप्रणाली में सकारात्मक परिवर्तन होता है तथा जिसके कारण मानसिक और भावनात्मक संरचना सुचारु रूप से कार्य करने लगती है। इसके साथ ही इस विशिष्ट यौगिक अभ्यास से आध्यात्मिक क्षमताएँ भी विकसित होती हैं, जिनका सकारात्मक प्रभाव जीवन संतुष्टि स्तर पर पड़ता है।

उल्लेखनीय है कि इस महत्त्वपूर्ण शोध अध्ययन के निष्कर्ष में जो सकारात्मक परिणाम प्राप्त हुए हैं, उसका मूल कारण शोधार्थी द्वारा अध्ययन हेतु चयन की गई विपश्यना ध्यान की विशिष्ट योग तकनीक है। यह प्राचीन, किंतु अत्यंत प्रभावी और कारगर ध्यान-विधि है। यह आत्मनिरीक्षण से आत्मसजगता और आत्मपरिवर्तन एवं रूपांतरण की विधि है।

विपश्यना का अर्थ है—विशेष रूप से देखना। जो जैसा है, उसे ठीक वैसा ही देखना-समझना विपश्यना है। साधना मार्ग में इसके अभ्यासकर्त्ता के लिए आवश्यक है कि वह पंचशील अर्थात अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और मद्यपान त्याग जैसे नियमों का पालन करे तथा दिनचर्या को सात्त्विक और सकारात्मक रखे।

विपश्यना ध्यान में अभ्यासकर्त्ता का पहला कदम है—आनापान साधना अर्थात 'प्राणापान'। आनापान का तात्पर्य है प्राण और अपान की क्रियाओं को देखना। इस अभ्यास में शरीर में श्वास को भीतर तक जाते हुए तथा बाहर आते हुए देखना-अनुभव करना है। श्वास-प्रश्वास की प्रत्येक क्रिया पर सजगतापूर्वक ध्यान देने का अभ्यास करना होता है। जैसे-जैसे ध्यान में श्वास को देखने की सूक्ष्मता उत्तरोत्तर बढ़ती जाती है; वैसे-वैसे मन की एकाग्रता एवं सजगता प्राप्त होती जाती है।

विपश्यना योग का दूसरा महत्त्वपूर्ण पक्ष है अभ्यास के क्रम में मौन रहना। मौन से शक्ति का संरक्षण होता है। मौन का तात्पर्य सिर्फ मुँह से न बोलने मात्र तक ही नहीं है, अपितु किन्हीं संकेतों या अन्य प्रकार से विचार-विनिमय न करना भी है। मौन के साथ-साथ इस अभ्यास में मन की शुद्धता के लिए प्रज्ञा जागरण की साधना है। इसमें अभ्यासकर्त्ता अपनी मानसिक चेतना को सजग बनाकर अपने दोष-दुर्गुणों आदि को दूर कर आंतरिक शुद्धि प्राप्त करने का प्रयास करता है।

यह आत्मनिरीक्षण द्वारा आत्मानुसंधान की सरल विधि है। इसमें प्रयोगकर्त्ता शरीर और मन की चेतनात्मक गतिविधियों का गहराई से अवलोकन करता है तथा मनोभावों के स्तर पर फैली अशुद्धियों को दूर कर उनके स्थान पर प्रेम, दया, करुणा, उदारता जैसे दिव्य गुणों को धारण करता है। श्रेष्ठ गुणों के व्यक्तित्व में स्थापित हो जाने पर जीवन की सभी चिंताएँ, दु:ख आदि स्वत: दूर होने लगते हैं तथा मन में प्रसन्नता और जीवन में सार्थकता एवं संतुष्टि की भावना सुदृढ़ होने लगती है।

विपश्यना ध्यान-विधि एक सहज और सरल यौगिक तकनीक है। योग के साधना मार्ग में साधक अपनी आंतरिक सजगता और उच्चस्तरीय एकाग्रता प्राप्त करने के उद्देश्य से इस ध्यान-विधि को अपनाते हैं तथा आधुनिक मनोचिकित्सा के क्षेत्र में चिंता, तनाव, अवसाद आदि मानसिक समस्याओं के उपचार में भी ध्यान को अत्यंत प्रभावकारी तकनीक के रूप में प्रयुक्त किया जाता है।

इन्हीं विशेषताओं के कारण शोधार्थी ने इस ध्यान-विधि को कार्पोरेट क्षेत्र के कर्मचारियों की मानसिक व भावनात्मक चुनौतियों के प्रबंधन एवं समाधान हेतु सर्वाधिक उपयुक्त मानकर अपने अध्ययन में प्रयुक्त किया है।

प्रयोग संपन्न होने पर इसमें सम्मिलित व्यावसायिक कर्मचारियों द्वारा शोधार्थी से इस विधि से संबंधित अनेक रोचक अनुभव साझा किए गए; जैसे—कार्य का प्रारंभ करने से पूर्व एक घंटे का समय इस योगाभ्यास को करने से दिन की शुरुआत बहुत अच्छी होती है और पूरे दिन के कार्यों एवं व्यवहार पर इसका सकारात्मक प्रभाव पड़ता है। ऐसे में लोग सहकर्मियों एवं अन्य लोगों के साथ बेहतर सामंजस्य कर पाते हैं तथा अनेक तरह के कार्यों के बीच आपा-धापी में भी मन को नियंत्रित और शांत रख पाते हैं।

जैसे शरीर की कार्यक्षमता को बनाए रखने के लिए कई लोग औषधियुक्त पेय का उपयोग करते हैं, ठीक वैसे ही यह ध्यान मानसिक एवं भावनात्मक स्वास्थ्य एवं संतुलन के लिए एक शक्तिशाली एवं प्रभावी पेय का कार्य करता है। व्यावसायिक कर्मचारियों की व्यस्त एवं तनावयुक्त दिनचर्या से उत्पन्न होने वाले असामान्य व्यवहार, जैसे—क्रोध, चिड़चिड़ापन, चिंता, भय, असुरक्षा आदि अनेक कमजोरियों को नियंत्रित करने में विपश्यना ध्यान-विधि चमत्कारिक रूप से सकारात्मक परिणाम उत्पन्न करती है।

इस अध्ययन के निष्कर्ष के आधार पर यह स्पष्ट कहा जा सकता है कि विपश्यना ध्यान का व्यावसायिक तनाव व जीवन-संतुष्टि स्तर पर ही सकारात्मक प्रभाव नहीं पड़ता, वरन संपूर्ण स्वास्थ्य इससे प्रभावित होता है तथा व्यावसायिक क्षेत्र के साथ-साथ अन्य सभी क्षेत्र के कर्मचारियों एवं मानसिक समस्याओं से घिरे लोगों के लिए भी अत्यंत कारगर उपाय है।

यह स्पष्ट होता है कि यह एक ऐसी ध्यान-प्रणाली है, जिसे अपनाकर तनाव, चिंता, अवसाद जैसी गंभीर समस्याओं से मुक्ति प्राप्त कर आंतरिक स्थिरता, प्रसन्नता एवं जीवन संतुष्टि की भावना को विकसित बनाया जा सकता है। ❑

प्रतिभा वस्तुत: वह संपदा है, जो व्यक्ति की मनस्विता, ओजस्विता, तेजस्विता के रूप में बहिरंग में प्रकट होती है। यदि प्रसुप्त को उभारा जा सके, स्वयं को खराद पर चढ़ाया जा सके तो व्यक्ति असंभव को भी संभव बना सकता है। यह अध्यात्म विज्ञान का एक सुनिश्चित एवं अटल सत्य है। ***—परमपूज्य गुरुदेव***

धरती के रहस्यमयी स्थल

धरती तमाम तरह की विविधताएँ लिए हुए है, जिसमें कई स्थल अपने प्राकृतिक सौंदर्य से अभिभूत करते हैं, तो कई अपनी विचित्रता के कारण विस्मित भी करते हैं। साहसी पर्यटकों एवं जिज्ञासु पथिकों के लिए ये स्थल यात्रा का आमंत्रण जैसा देते रहते हैं, हालाँकि इन स्थलों की यात्रा के अपने जोखिम भी रहते हैं।

डानाकिल डिप्रेशन उत्तरी अफ्रीका के इथियोपिया में एक ऐसा ही रहस्यमय स्थल है। यहाँ आकर ऐसा लगता है कि जैसे किसी दूसरे लोक में आ गए हों। इसके कई कारण हैं। यह विश्व का सबसे गरम क्षेत्र है। यहाँ वर्ष भर का औसतन तापमान 45 डिगरी सेंटीग्रेड रहता है। साथ ही यहाँ सबसे अधिक सूखा भी पड़ता है और यह विश्व का सबसे निचला क्षेत्र भी है, जो समुद्र तल से लगभग 100 मीटर नीचे है। वर्ष भर में औसतन 100 से 200 मिलीमीटर ही बारिश यहाँ होती है।

डानाकिल डिप्रेशन पर तीन टेक्टॉनिक प्लेट्स मिलती हैं और वे हर वर्ष एकदूसरे से 1-2 सेंटीमीटर दूर हो रही हैं। इसी कारण धरती के भीतर का पिघला हुआ लावा यहाँ बाहर निकलता रहता है और यहाँ की धरती सदा आग ही उगलती रहती है। यही नहीं, यहाँ आग की वर्षा भी होती रहती है। इन परिस्थितियों में यहाँ रहना कठिन ही नहीं, बल्कि असंभव-सा है, हालाँकि इसके आस-पास अफार समुदाय के लोग रहते हैं।

यहाँ की भूमि के नीचे ज्वालामुखी केंद्र हैं, जिस कारण यहाँ कई गरम जल के सोते व झरने भी हैं। अत्यधिक गरमी के कारण यह जल सूख जाता है और यहाँ नमक की कई खदानें भी हैं। आस-पास रहने वाले अफार समुदाय के लोग यहाँ के नमक को ऊँटों व गधों पर लादकर समीप के शहर मेकेले में बेचते हैं, जहाँ पहुँचने में उन्हें एक सप्ताह तक का समय लग जाता है। माना जाता है कि लाखों वर्षों के बाद डानाकिल डिप्रेशन एक गहरे गड्ढे में बदल जाएगा, जहाँ सागर का पानी भरा होगा।

बरमूडा ट्राइएंगल या त्रिकोण अटलांटिक महासागर में पृथ्वी के सबसे रहस्यमयी स्थलों में से एक है। अमेरिका के अटलाँटिक महासागर के दक्षिणपूर्वी तट पर बरमूडा, फ्लोरिडा और प्यूरटोरिका के बीच स्थित पाँच लाख वर्ग किलोमीटर का यह क्षेत्र अनसुलझे रहस्यों का गढ़ माना जाता है।

पिछले सौ वर्षों में इसमें 75 हवाई जहाज, 100 से अधिक छोटे-बड़े समुद्री जहाज समा चुके हैं और 1000 से अधिक लोगों की मौत हो चुकी है। यह एक रहस्य बना हुआ है, इसलिए इसे डेविल्ज ट्राइएंगल या शैतानी त्रिकोण भी कहा जाता है।

बरमूडा त्रिकोण उत्तर अटलांटिक महासागर में स्थित ब्रिटेन का प्रवासी क्षेत्र है। यह अमेरिका के पूर्वी तट पर मियामी से 1770 किमी, कनाडा के हैलिफैक्स, नोवा स्कोटिया के दक्षिण में 1350 किमी की दूरी पर है। माना जाता है कि सबसे पहले इसकी जानकारी क्रिस्टोफर कोलंबस ने दी थी, उन्होंने यहाँ की रहस्यमयी घटनाओं का वर्णन किया था और इसे एलियंज के बेस तक जाने का मार्ग बताया था। यहाँ से गुजरने वाले जहाज क्यों गायब हो जाते हैं—इस पर कई शोध हुए हैं, लेकिन कोई ठोस कारण सामने नहीं आए हैं।

वैज्ञानिकों का मानना है कि मौसम के साथ यात्रियों की लापरवाही इन घटनाओं का मुख्य कारण बनती है। यहाँ 270 किमी प्रतिघंटे की गति से हवाएँ चलती हैं—इससे संपर्क में आने वाले जहाजों का संतुलन बिगड़ जाता है और वे दुर्घटनाग्रस्त हो जाते हैं।

आम लोगों का मानना है कि यहाँ कोई अदृश्य शक्ति है, जो भारी-से-भारी चीजों को खींचने की क्षमता रखती है। वैज्ञानिकों का मानना है कि हवा में हेक्सागोनल आकार के बादल बम और तेज हवाएँ जब मिलकर जहाज से टकराते हैं तो वे उसे खींचकर समुद्र में ले जाते हैं। कुछ लोगों का मानना है कि यहाँ की असामान्य चुंबकीय गतिविधियाँ भी यहाँ से गुजर रहे यान के कंपास को बंद कर देती हैं। कुछ लोग समुद्री चक्रवातों को इसके लिए जिम्मेदार मानते हैं।

जापान का ओकिगहारा जंगल भी विश्व में भयावह रहस्य के लिए जाना जाता है। जापान के माउंट फूजी की पहाड़ियों की तली में ऑकिगहारा जंगल विश्व में स्यूसाइड फोरेस्ट के रूप में प्रख्यात है। हर वर्ष सैकड़ों लोग यहाँ आत्महत्या करते हैं। यह जंगल जापान की राजधानी टोक्यो से मात्र दो घंटे से भी कम दूरी पर है। 35 वर्गकिमी के विशाल क्षेत्र में फैला यह जंगल इतना घना है कि इसे पेड़ों का सागर भी कहा जाता है। इस जंगल में लोगों का खो जाना आम बात है।

इस जंगल में यदि कोई प्रवेश करता है, तो उसका बिना जानकार के सहयोग के बाहर निकलना बहुत कठिन हो जाता है। एक प्राचीन किंवदंती के अनुसार एक समय जापान में लोग अपना निर्वाह नहीं कर पा रहे थे, तो उन्हें ऑकिगहारा के इस जंगल में छोड़ दिया गया था, जहाँ वे सभी भूख के कारण मृत पाए गए।

ऐसा माना जाता है कि उन मृतकों की आत्माएँ आज भी इन जंगलों में भटक रही हैं। यहाँ पर मोबाइल, कंपास आदि भी काम नहीं करते। मोबाइल के जहाँ सिग्नल नहीं आते तो वहीं कंपास सही ढंग से काम नहीं करते। यहाँ की भूमि में चुंबकीय लोहा है। इन कारणों से जो व्यक्ति इस जंगल में प्रवेश करते हैं, उनका बाहर निकलना बहुत कठिन हो जाता है।

इस सबके बावजूद यह क्षेत्र बहुत सुंदर है तथा प्रकृति व रोमांचप्रेमी यहाँ घूमने आते हैं। वे समूह में घूमते हैं, प्लास्टिक टेप या रिबन चिपकाते हुए आगे बढ़ते हैं, ताकि वापस उसी रास्ते से लौट सकें। इसके बावजूद इस जंगल में अकेले, बिना तैयारी के घूमना खतरनाक रहता है। आश्चर्य नहीं कि इसके प्रवेश द्वार पर सचेतक सूचनापट लगा है, जिसमें लिखा है—ध्यान से अपने बच्चों, परिवार और अपने जीवन के बारे में सोचें, जो कि आपके माता-पिता का दिया अनमोल तोहफा है।

ऑस्ट्रेलिया की हिलियर झील भी अपनी रंगत के कारण विचित्रता लिए हुए है, जो पश्चिमी ऑस्ट्रेलिया के दक्षिणी तट पर यहाँ के सबसे बड़े टापू में स्थित एक खारे जल की झील है, जिसका रंग गुलाबी है। इसमें मछलियाँ भी पाई जाती हैं व तैरने के लिए भी यह सुरक्षित है। हालाँकि पर्यटकों को इसके जल में उतरने की मनाही रहती हैं। कोई नहीं जानता कि इस झील के पानी का रंग गुलाबी क्यों है। हालाँकि वैज्ञानिकों के एक दल ने इसका कारण अलगाई, हेलोबैक्टीरिया और दूसरे जीवाणुओं के रूप में पाया है। इस झील का जल मृत सागर की तरह अत्यधिक खारा है।

भारत में लेह-लद्दाख के समीप की मेग्नेटिक हिल भी अपने चुंबकीय गुणों के कारण पर्यटकों का ध्यान आकर्षित करती है। कारगिल—लेह सड़क पर लेह शहर से 30 किमी की दूरी पर सड़क का यह हिस्सा गुरुत्वाकर्षण के विपरीत सक्रिय शक्तियों के कारण असाधारण है। यहाँ की चुंबकीय पहाड़ियों से जुड़ी प्राकृतिक घटना को देखने के लिए हर वर्ष हजारों पर्यटक आते हैं। इस

असाधारण गुण के कारण, इस पहाड़ी को मिस्ट्री हिल, ग्रेविटी हिल जैसे कई नामों से भी जाना जाता है।

कई सिद्धांत इसकी व्याख्या के लिए उपलब्ध हैं। लोगों का मानना है कि यहाँ कभी ऐसी सड़क थी, जो स्वर्ग की ओर ले जाती थी। वैज्ञानिकों के अनुसार यह सड़क सशक्त चुंबकीय क्षमता लिए हुए है, जो अपने प्रभाव क्षेत्र में आए वाहनों को अपनी ओर खींचती है। दूसरे सिद्धांत के अनुसार यह एक दृष्टिभ्रम मात्र है, जिसके कारण एक ढलानदार सड़क खड़ी दिखती है और इस पर सरकते हुए वाहन के पहाड़ी द्वारा खींचे जाने का भ्रम होता है।

इटरनल फ्लेम फॉल, अमेरिका में न्यूयॉर्क के समीप शेल क्रीक रिजर्व के जलप्रपात के मुहाने पर एक गुफा में अनवरत जल रही एक रहस्यमयी ज्योति है, जो झरने के पानी के बीच जलती रहती है। यह आग किसने व कब लगाई, यह एक रहस्य ही बना हुआ है। यहाँ के झरने में पूरे वर्ष भर पानी झरता रहता है, बरसात में तो पानी की मात्रा बढ़ी-चढ़ी रहती है, लेकिन यह लौ कभी बुझती नहीं। इस लौ को देखने दूर-दूर से पर्यटक आते हैं। यह कुछ ऐसे ही है, जैसे हिमाचल के काँगड़ा जिले में ज्वाला जी के मंदिर में जल रही दिव्य ज्योतियाँ, जो अनवरत रूप से जल रही हैं।

इस ज्योति से कई मान्यताएँ जुड़ी हुई हैं। कुछ का मानना है कि यह एक दैवी चमत्कार है। कुछ इसे प्रकृति का अनसुलझा रहस्य मानते हैं। कुछ का मानना है कि यह लौ तब बुझेगी, जब महाप्रलय आएगी। यह जल रही है, इसका अर्थ है कि सब ठीक चल रहा है।

वैज्ञानिक भी इसके रहस्य को हल करने में जुटे हैं। उनकी मान्यता है कि यह लौ मीथेन गैस के कारण है। यहाँ धरती के नीचे मीथेन का भंडार हो सकता है। हो सकता है कि किसी ने यहाँ पर कभी आग लगा दी हो और तब से ज्योति अखंड रूप से जल रही हो।

ये थे इस धरती के विभिन्न कोनों में विद्यमान कुछ स्थल, जो अपने रहस्यमयी स्वरूप के कारण, तो कुछ अपनी विचित्रता के कारण यात्रियों एवं पर्यटकों का ध्यान आकर्षिक करते हैं। वैज्ञानिक जहाँ इनकी अपनी व्याख्याएँ देते हैं तो वहीं लोककिंवदंतियाँ इनमें अपना रस घोलती हैं। इन सबके बावजूद इनमें कुछ रहस्य अवश्य हैं, जो लोगों को स्रष्टा की अद्भुत सृष्टि के बारे में सोचने के लिए विवश करते हैं। ❑

अध्यात्म के प्रति अभिरुचि देखकर पिता ने अपने युवा पुत्र एरिट्रियस को प्रसिद्ध दार्शनिक ज़ीनो के पास शिक्षण हेतु भेजना आरंभ किया। एक दिन एरिट्रियस घर लौटा तो पिता ने पुत्र से प्रश्न किया—''आज तुमने क्या सीखा?'' पुत्र ने उत्तर दिया—''मैं समय आने पर आपको बता दूँगा।'' दो-तीन बार फिर प्रश्न करने पर जब यही उत्तर मिला तो पिता के क्रोध का पारावार न रहा। उन्होंने एरिट्रियस को बुरी तरह पीट डाला। एरिट्रियस बिना कुछ बोले मार सह गया और फिर बोला—''मेरी आज की शिक्षा पूर्ण हुई। आज मेरे गुरु ने सिखाया था कि मनुष्य में क्रोध सहन करने की क्षमता होनी चाहिए।'' सत्य का भान होते ही पिता को बहुत ग्लानि हुई और उन्होंने पुत्र को छाती से लगा लिया।

सात्त्विक, राजसिक एवं तामसिक यज्ञ

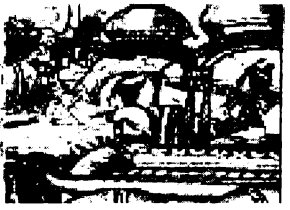

(श्रीमद्भगवद्गीता के श्रद्धात्रयविभागयोग नामक सत्रहवें अध्याय की दशवीं किस्त)

[विगत किस्त में श्रीमद्भगवद्गीता के सत्रहवें अध्याय के आठवें, नवें एवं दसवें श्लोकों की व्याख्या प्रस्तुत की गई थी। इन श्लोकों में भगवान श्रीकृष्ण अर्जुन को समझाते हुए कहते हैं कि आयु, सतोगुण, बल, आरोग्य, सुख और प्रसन्नता बढ़ाने वाले, स्थिर रहने वाले, हृदय को शक्ति प्रदान करने वाले रसयुक्त तथा स्नेहयुक्त—ऐसे भोज्य पदार्थ सात्त्विक मनुष्य को प्रिय होते हैं। अति कड़ुए, अति खट्टे, अति नमकीन, अति गरम, अति तीखे, अति रूखे और अति दाहकारक पदार्थ राजसिक मनुष्य को प्रिय होते हैं जो कि दुःख, शोक और रोगों को जन्म देने वाले हैं। जो भोजन सड़ा हुआ, रसविहीन, दुर्गंधित, बासी एवं जूठा है तथा जो महान अपवित्र है—ऐसा भोजन तामसिक मनुष्य की रुचि का होता है। श्रीभगवान के यहाँ इन विचारों को रखने के पीछे का अभिप्राय यह है कि आहार लेने वाले व्यक्ति की वृत्ति, रुचि एवं व्यक्तित्व के अनुरूप ही उसकी भोज्य पदार्थों के प्रति आसक्ति होती है। जिसका अंतर्मन जिस प्रकार का होता है, वह उसी तरह के भोजन को करने की आकांक्षा करता है और उसी तरह के भोज्य पदार्थों के प्रति आकर्षित भी होता है। इसीलिए वे इन श्लोकों में 'प्रिय', 'तामसप्रियम्' जैसे शब्दों को उपयोग में लाते हैं, ताकि यह स्पष्ट हो सके कि ये भोज्य पदार्थ, उनको ग्रहण करने वाले व्यक्ति की अभिरुचि के अनुसार होते हैं।

इसके अतिरिक्त श्रीभगवान भोज्य पदार्थों के प्रति रुचि को एक विशेष क्रम में भी अभिव्यक्त करते हैं। जब वे सात्त्विक प्रवृत्ति वाले मनुष्य की आहार के प्रति अभिरुचि का वर्णन करते हैं तो वे पहले भोज्य पदार्थों को ग्रहण करने के परिणाम के विषय में बोलते हैं; क्योंकि वे जानते हैं कि सात्त्विक वृत्ति वाला मनुष्य कोई कार्य तभी करता है, जब उसका परिणाम उसके सामने स्पष्ट होता है। इसके विपरीत राजसिक वृत्ति वाला मनुष्य कार्य कर चुकने के बाद उस पर विचार करता है, इसलिए उसके विषय में बोलते समय भगवान कृष्ण पहले भोज्य पदार्थों का वर्णन करते हैं और तब उसके परिणामों के विषय में बताते हैं; क्योंकि राजसिक वृत्ति वाले मनुष्य के द्वारा परिणाम पर विचार कार्य कर लेने के बाद ही किया जाता है। तामसिक वृत्ति वाला मनुष्य कार्य कर लेने से पहले अथवा बाद में भी उसके परिणाम पर चिंतन नहीं करता है, अतः उसके विषय में बोलते समय श्रीभगवान परिणाम के विषय में कुछ भी नहीं कहते हैं। स्पष्ट है कि यहाँ श्रीभगवान भोज्य पदार्थों के गुणों का वर्णन नहीं कर रहे हैं, बल्कि उनको जिस रुचि एवं जिस वृत्ति के साथ ग्रहण किया जाता है, उनका वर्णन कर रहे हैं।]

इसके बाद श्रीभगवान कहते हैं कि—

अफलाकाङ्क्षिभिर्यज्ञो विधिदृष्टो य इज्यते।
यष्टव्यमेवेति मनः समाधाय स सात्त्विकः ॥ 11 ॥

शब्दविग्रह—अफलाकाङ्क्षिभिः, यज्ञः, विधिदृष्टः, यः, इज्यते, यष्टव्यम्, एव, इति, मनः, समाधाय, सः, सात्त्विकः।

शब्दार्थ—जो (**यः**), शास्त्र विधि से नियत (**विधिदृष्टः**), यज्ञ (**यज्ञः**), करना ही कर्त्तव्य है (**यष्टव्यम् एव**), इस प्रकार (**इति**), मन को (**मनः**), समाधान करके (**समाधाय**), फल न चाहने वाले पुरुषों द्वारा (**अफलाकाङ्क्षिभिः**), किया जाता है (**इज्यते**), वह (**सः**), सात्त्विक है (**सात्त्विकः**)।

अर्थात—यज्ञ करना ही कर्त्तव्य है, इस तरह मन को संतुष्ट करके फल की इच्छा से रहित मनुष्यों द्वारा जो शास्त्रोक्त विधि से यज्ञ किया जाता है, वह यज्ञ सात्त्विक होता है, परंतु हे भरतश्रेष्ठ अर्जुन! फल की कामना को लेकर (सकाम) अथवा दंभ की पूर्ति के लिए जो यज्ञ किया जाता है, वह यज्ञ राजसिक होता है एवं शास्त्रविहीन, अन्न-दान से रहित, बिना मंत्रों के, बिना दक्षिणा के और बिना श्रद्धा के किए जाने वाले यज्ञ को तामसिक यज्ञ कहते हैं।

कहने का अर्थ इतना भर है कि यदि यज्ञों में सम्मिलित होने वाले, करने की प्रक्रिया, करने की प्रणाली, आचार-व्यवहार इत्यादि सात्त्विक होंगे तो वह यज्ञ सात्त्विक हो जाएगा, राजसिक होंगे तो वह राजसिक हो जाएगा और यदि ये सब तामसिक होंगे तो वह तामसिक हो जाएगा।

यहाँ भगवान कहते हैं कि सात्त्विक प्रवृत्ति वाला मनुष्य एकनिष्ठ होता है, वह समझता है कि यदि मुझे यज्ञ करना है तो इसका आधार कामनाएँ हो ही नहीं सकतीं। वह इसे मनुष्य होने के नाते अपने कर्त्तव्यपालन के भाव से करता है और कहता है कि **'यष्टव्यम् एव इति'** अर्थात ये ही मेरा कर्त्तव्य है, इसके अतिरिक्त भला और किसी कारण या भाव की आवश्यकता ही मुझे क्यों हो?

इसी एक भाव से, कर्त्तव्यपालन के भाव से सात्त्विक वृत्ति वाले मनुष्य का मन समाधान को, संतोष को प्राप्त कर सकता है। जब मन में भाव इतना संतोषप्रद हो तो उस यज्ञ की प्रक्रिया स्वत: ही शास्त्रोक्त हो जाती है। जो निष्काम हो, उसका मनोभाव कर्त्तव्यपालन के अतिरिक्त और कुछ रह ही नहीं जाता। श्रीभगवान ने गीता में पहले कहा भी है कि **'यो यच्छ्रद्धः स एव सः'** अर्थात जिसकी जैसी श्रद्धा होती है, वैसी ही उसकी कर्म करने की भावना होती है। जो निष्काम भाव से यज्ञ को करता है, उसका यज्ञ सात्त्विक होता है।

यहाँ श्रीभगवान यह समझाने का प्रयत्न कर रहे हैं कि कोई भी कर्म अपने आप में सात्त्विक, राजसिक या तामसिक नहीं होता, वरन वह व्यक्ति के मनोभाव के अनुरूप वैसा परिणाम लाता है। राम-रावण युद्ध में भगवान राम भी युद्ध की शुरुआत यज्ञ करने से करते हैं और रावण भी; पर दोनों के परिणामों में, मनोभावों में भिन्नता हो जाती है। इसी क्रम में भगवान श्रीकृष्ण अर्जुन को सात्त्विक यज्ञ का स्वरूप बताने के बाद राजसिक यज्ञ कौन-सा होता है—यह स्पष्ट करते हैं।

वे कहते हैं कि फल की कामना को लेकर किया जाने वाला यज्ञ या फिर दंभ के प्रदर्शन के लिए कियां जाने वाला यज्ञ राजसिक हो जाता है। ऐतिहासिक आख्यानों में ऐसे अनेकों उदाहरण मिलते हैं, जहाँ कोई यज्ञ करने के लिए इसीलिए बैठा, ताकि उसकी आकांक्षाओं की पूर्ति हो सके। ऐसे यज्ञ फिर राजसिक प्रवृत्ति के यज्ञ कहलाते हैं। इसी क्रम में श्रीभगवान कहते हैं कि कुछ ऐसे भी लोग होते हैं, जो मात्र दिखावटीपन के लिए, दंभ के प्रदर्शन के लिए अथवा बाह्य आडंबर के लिए यज्ञ को करते हैं—ऐसे लोगों के यज्ञ राजसिक प्रवृत्ति के यज्ञों में आते हैं।

पौराणिक आख्यानों में दक्ष प्रजापति द्वारा किया गया यज्ञ एक ऐसा ही यज्ञ था, जहाँ उनका यज्ञ करने का उद्देश्य और आधार मात्र अपने दंभ का प्रदर्शन था। परिणामस्वरूप माता सती को उस यज्ञ में प्राणों की आहुति देनी पड़ी और अंतत: भगवान शिव के रुद्र रूप ने उस यज्ञ को विनष्ट कर दिया।

यज्ञ तो सात्त्विक कर्म माना जाता है, फिर भगवान को उसे नष्ट क्यों करना पड़ा? कारण यही

था कि दक्ष के द्वारा उस यज्ञ का प्रयोग मात्र अपने दंभ प्रदर्शन के लिए किया जा रहा था। अत: उसको विनष्ट करना भगवान के लिए आवश्यक हो गया था। यही कारण है कि रावण के यज्ञ को हनुमान जी द्वारा नष्ट कर दिया गया था। यहाँ बारंबार इस शाश्वत सत्य की ओर इशारा किया जा रहा है कि कोई कर्म अपने स्तर पर न सतोगुणी है, न रजोगुणी है और न तमोगुणी, वरन उसको करने में जैसी भावना का प्रयोग हुआ है—वह यह निर्धारित करेगी कि वो कर्म किस श्रेणी का है।

सात्त्विक एवं राजसिक प्रवृत्ति के यज्ञों का वर्णन करने के बाद भगवान कृष्ण तामसिक यज्ञ का वर्णन करते हुए कहते हैं कि ऐसा यज्ञ शास्त्र विधि से पूरी तरह विहीन होता है— इसमें वे न केवल शास्त्रीय रीति का पालन करने से चूकते हैं, बल्कि वे श्रद्धाविहीन होकर यज्ञ की प्रक्रिया को संपन्न करते हैं। स्पष्ट है कि ऐसे विचार एवं भाव के साथ किया गया यज्ञ तामसिक ही होगा एवं तदनुरूप परिणाम ही प्रकट करेगा। (क्रमश:)

दुनिया के सर्वाधिक धनाढ्य व्यक्तियों में शुमार जॉन डी. रॉकफेलर का जन्म सन् 1839 में अमेरिका में हुआ। वे बहुत पढ़े-लिखे तो नहीं थे, पर उनके मन में ऊँचा उठने और तरक्की करने की तीव्र ललक थी। अपनी युवावस्था में ही उन्होंने तेल-व्यवसाय के क्षेत्र में अपना कदम रखा और दिन-रात कड़ी मेहनत करते हुए एक दिन विश्व की सबसे बड़ी तेल कंपनी स्टैंडर्ड ऑयल कंपनी के मालिक बने। पर जीवन में एकतरफा सोच, धन के पीछे की दौड़ और बेतरतीब जीवनशैली ने उनके स्वास्थ्य पर बुरा असर डाला।

बीमारी के दिनों में बिस्तर पर पड़े-पड़े उन्हें महसूस हुआ कि पैसा ही सब कुछ नहीं है। पैसा रोटी तो दिला सकता है, पर भूख नहीं। पैसा साधन तो हो सकता है, पर साध्य नहीं। उन्होंने निश्चय किया कि अब जब वे स्वस्थ होंगे तो अपनी संपत्ति का उपयोग श्रेष्ठ और शुभ कार्यों के लिए करेंगे। इसी प्रण के साथ उन्होंने चिकित्सा और शिक्षा के विकास के लिए 55 करोड़ डॉलर (वर्तमान भारतीय मुद्रा में करीब 2.75 खरब रुपये) दान दिए, जिससे रॉकफेलर फाउंडेशन की स्थापना की गई। यह संस्था उनकी मृत्यु के वर्षों बाद भी अच्छे उद्देश्यों के लिए समर्पित है।

गरम होती धरती और आसन्न संकट

पर्यावरण एक ज्वलंत मुद्दा है; क्योंकि इससे हमारा अस्तित्व जुड़ा हुआ है। आज ग्लोबल वॉर्मिंग के चलते धरती का तापमान बढ़ रहा है तथा इसके कारण नानाविध समस्याएँ उत्पन्न हो रही हैं। इसके चलते पूरे विश्व में जलवायु-परिवर्तन हो रहा है व तरह-तरह के पर्यावरणीय संकट उत्पन्न हो रहे हैं, लेकिन पिछले दिनों जिस मुद्दे ने सबका ध्यान आकर्षित किया है—वह है यूरोप में अप्रत्याशित रूप से बढ़ता हुआ तापमान।

यूरोप को अमूमन शीतल प्रदेश माना जाता रहा है। गरमियों में भारत के धनकुबेरों एवं नवधनाढ्य वर्ग का यह छुट्टियों को मनाने का लोकप्रिय ठिकाना रहा है, लेकिन यहाँ पर तापमान की अप्रत्याशित वृद्धि ने सबको चौंका दिया है।

फ्रांस में वर्ष 2009 में तापमान 35 डिगरी दर्ज किया गया था, जो उस समय एक रिकॉर्ड था, लेकिन इस वर्ष यह 42 डिगरी तक पहुँच चुका है। पहले यहाँ पंखे नहीं मिलते थे और एयर कन्डीशनर अर्थात वातानुकूलित सुविधा का तो कोई सवाल ही नहीं था, लेकिन आज इनका बाजार खूब फल-फूल रहा है; क्योंकि बढ़ते तापमान से जनता के पसीने छूट रहे हैं।

इस वर्ष गरमियों में ब्रिटेन की स्थिति भी बदतर पाई गई है। इस दौरान यहाँ सड़कें पिघल रही थीं, एयरपोर्ट में हवाई पट्टी पर विमानों का नीचे उतरना दुष्कर हो गया था और उन्हें आसमान में चक्कर लगाते हुए घंटों इंतजार करना पड़ा था। बाहर तापमान इतना बढ़ गया कि हिदायत दी गई थी कि लोग घरों से तब तक बाहर न निकलें, जब तक कि बहुत आवश्यक न हो।

पहली बार यहाँ तापमान 40 डिगरी सेंटीग्रेड के पार पाया गया, जो वर्ष 2019 में अधिकतम 38.7 डिगरी सेंटीग्रेड नोट किया गया था। इसी तरह स्विट्जरलैंड विश्व के सबसे लोकप्रिय ठिकानों में से एक रहा है, जो विश्व का सबसे सुंदर देश माना जाता है, लेकिन जलवायु-परिवर्तन की मार वहाँ भी प्रत्यक्ष दिख रही है। इस वर्ष स्विट्जरलैंड के इतिहास में सन् 1864 के बाद सबसे अधिक गरमी देखी गई। यहाँ के शहर जेनेवा का तापमान 38.2 डिगरी सेंटीग्रेड दर्ज किया गया।

एक अध्ययन के अनुसार वहाँ के ग्लेशियर अर्थात हिमनद सन् 1931 से 2015 के बीच आधे रह गए हैं और इसके बाद विगत 6 वर्षों में इनमें 12 प्रतिशत कमी आई है, जो भविष्य की दृष्टि से एक गंभीर चिंता का विषय है। ऐसे ही स्पेन से लेकर जर्मनी तक सभी जगह इस वर्ष की गरमियों में त्राहिमाम् मची रही। वहाँ गरमी के कारण सैकड़ों लोगों की जान तक चली गई।

मूर्द्धन्य भौतिकविज्ञानी और खगोलशास्त्री स्टीफन हॉकिन्स ने मृत्यु से छह माह पूर्व भविष्यवाणी की थी कि हमारी पृथ्वी 600 वर्षों में आग का गोला बन जाएगी। पृथ्वी के सबसे ठंढे क्षेत्र उत्तरी व दक्षिणी ध्रुव की स्थिति को देखते हुए इस भविष्यवाणी की आहट को सुना जा सकता है, जहाँ ग्लोबल वॉर्मिंग की मार तीव्र हो रही है।

दक्षिण ध्रुव के अंटार्कटिका में 3234 मीटर ऊँचाई पर स्थित कॉनकोर्डिया स्टेशन पर 18 मार्च को तापमान माइनस 12.2 डिगरी सेल्सियस रिकॉर्ड किया गया, जो इससे पूर्व माइनस 42 डिगरी सेल्सियस के आस-पास रहता था अर्थात इसमें 40 डिगरी सेल्सियस से अधिक की वृद्धि दर्ज की गई है।

इसी तरह इससे भी अधिक ऊँचाई पर स्थित वोस्तोक स्टेशन पर तापमान माइनस 17.7 रिकॉर्ड किया गया, जो औसत से 15 डिगरी ऊपर था। इसी तरह तटीय टेरा नोवा बेस पर तापमान बरफ के गणनांक से 7 डिगरी सेल्सियस ऊपर छलाँग लगा गया। इसी तरह उत्तरी ध्रुव में ग्रीष्म ऋतु के आगमन से पूर्व ही कुछ क्षेत्रों में तापमान गलनांक तक पहुँच गया था।

मालूम हो कि पृथ्वी सन् 1979 से 2000 तक औसतन 0.6 डिगरी सेल्सियस तक गरम हुई है। गरमी का ही अप्रत्यक्ष प्रभाव है कि यूरोप सूखे की गंभीर चपेट में है। वहाँ इस वर्ष ऐसा सूखा देखने को मिला है, जो पिछले 500 वर्षों में नहीं दिखा था। भीषण सूखे के कारण यूरोप की नदियों में जल का स्तर बुरी तरह से गिर गया है। सूखे के कारण कृषि-उत्पादन कम हुआ है और ऊर्जा आपूर्ति भी बुरी तरह से प्रभावित हुई है।

नॉर्व में जल विद्युत उत्पादन घटा है और फ्रांस में परमाणु रिएक्टरों के परिचालन में गतिरोध उत्पन्न हुआ है। ब्रिटेन में सन् 1935 के बाद पड़े सबसे भीषण सूखे को देखते हुए बगीचों में पानी डालने पर रोक लग गई थी। इसी तरह स्पेन के इंडोलुसिया शहर में पानी के दैनिक उपयोग में कटौती की गई।

इसके साथ यूरोप में नदियों के सूख जाने से उनके नीचे दबे हजारों वर्ष पुराने निर्माण उभरकर सामने आ रहे हैं, जिनमें रोम की टिबर नदी में दो हजार वर्ष पुराने पुल की नींव, स्पेन में पाँच सहस्राब्दि पुराना स्मारक 'दि डोलमैन ऑफ ग्वाडापर्ल' आदि उभरकर सामने दिख रहे हैं। डैन्यूब नदी के सूख जाने से वे जहाज फिर दिखाई देने लगे हैं, जिन्हें नाजी जर्मनी ने सोवियत सेना के डर से नदी में डुबो दिया था।

नदियों में वे हंगर स्टोन भी दिखने लगे हैं, जो सूखे के दौरान समय-समय पर लगाए गए थे, जिनसे फसल कम होने व भूख की समस्या से पैदा आतंक की स्मृतियाँ भी जुड़ी हुई हैं।

इस तरह देखें तो हम पाते हैं कि पश्चिम के विकास के जिस तथाकथित मॉडल पर वहाँ के लोग इतराते फिरते थे, आज वह प्रश्नचिह्न के घेरे में है। उपभोक्तावादी संस्कृति व लालच की दुष्परिणति स्पष्ट सामने आ रही है। वस्तुतः पृथ्वी को ग्लोबल वॉर्मिंग की तरफ धकेलने में विकसित देशों की भूमिका अधिक रही है और आज वे स्वयं इसका दंश झेल रहे हैं। उनके साथ धरती का हर व्यक्ति इसकी कीमत चुकाने के लिए स्वयं को विवश-बाध्य अनुभव कर रहा है।

इसकी आहट हिमालय तक आ पहुँची है, जहाँ ग्लेशियर तेजी से पिघल रहे हैं और यहाँ की प्रकृति भी जलवायु-परिवर्तन की मार को अनुभव कर रही है। विदित हो कि हिमालय विश्व का सबसे ऊँचा और सबसे संवेदनशील पर्वत है। विश्व में दो ध्रुवों के बाद यहाँ सबसे अधिक बरफ जमी हुई है।

इसकी विभिन्न चोटियों व ग्लेशियरों पर ग्लोबल वॉर्मिंग का प्रभाव प्रत्यक्ष है। आश्चर्य नहीं कि यहाँ जलवायु-परिवर्तन के चलते पेड़-पौधे व वनस्पतियाँ तक प्रभावित हो चली हैं, जिसके चलते यहाँ खिलने वाले पुष्पों का ऋतुचक्र बिगड़ चला है। इस वर्ष हिमालय की ऊँचाइयों में उगने वाले

बुराँश फूल से लेकर ब्रह्मकमल पुष्प समय से दो सप्ताह पहले ही खिलते पाए गए।

वैज्ञानिक दशकों से ग्लोबल वॉर्मिंग के खतरों से परिचित थे व चेतावनी भी दे रहे थे, लेकिन विकास की अंधी दौड़ में सुनने की फुरसत किसको थी, लेकिन आज इसके भयावह प्रभाव प्रत्यक्ष हैं और इसकी गंभीरता को देखते हुए हर कोई चिंतित है।

इसके निवारण हेतु व्यापक स्तर पर गंभीर प्रयासों की आवश्यकता है। बढ़ते तापमान और जलवायु-परिवर्तन का मुख्य कारण ग्रीनहाउस गैसों का उत्सर्जन है। इनके समाधान के रूप में व्यक्ति के स्तर पर बहुत कुछ नहीं किया जा सकता है। आवश्यकता सामूहिक सोच को बदलने की है और सर्वोपरि वैश्विक स्तर पर वैज्ञानिक, पर्यावरणविद् एवं बुद्धिजीवी—जो समाधान इस संदर्भ में दे चुके हैं, उनको ईमानदारी से लागू करने की है। धरती का भविष्य पूरी मानवता से जुड़ा हुआ है, अत: सामूहिक स्तर पर साहसिक निर्णय एवं पहल के साथ इसकी रक्षा करना समय की माँग है एवं इसी पर इस सुंदर ग्रह का भविष्य टिका हुआ है। ❑

एक गाँव में एक लकड़हारा रहता था। जंगल से लकड़ियाँ काटकर जो धन मिलता, उसी में संतुष्ट रहता। एक दिन वह नदी किनारे एक पेड़ काट रहा था और उसकी कुल्हाड़ी पानी में गिर गई। पानी गहरा था और लकड़हारा यह सोच ही रहा था कि किस तरह अपनी कुल्हाड़ी वापस निकाले कि वहाँ एक देवता प्रकट हो गए। उन्होंने मंत्र विद्या से पानी में से कुल्हाड़ी बाहर निकाली, पर वो कुल्हाड़ी चाँदी की थी। उसे देखकर लकड़हारा बोला—"देव! क्षमा करें। यह कुल्हाड़ी मेरी नहीं है।"

देवता ने दूसरी बार में सोने की कुल्हाड़ी निकाली तो लकड़हारे ने "मेरी नहीं है"—ऐसा कहते हुए वो कुल्हाड़ी भी लेने से इनकार कर दिया। अंत में देवता ने उसकी कुल्हाड़ी निकाली और सोने-चाँदी की कुल्हाडियाँ भी उसे देते हुए बोले—"पुत्र! हम तुम्हारी ईमानदारी से प्रसन्न हैं। तुम ये सारी कुल्हाड़ियाँ रखो और सुख से जीवन यापन करो।" गाँव लौटकर लकड़हारे ने सारा घटनाक्रम अपने मित्र को सुनाया। उसका मित्र बेईमानी की भावना रखता था। अगले दिन वह भी उसी स्थान पर पेड़ काटने गया और जान-बूझकर अपनी कुल्हाड़ी पानी में डाल दी। देवता प्रकट हुए और उन्होंने पहले चाँदी की तथा फिर से सोने की कुल्हाड़ियाँ उसे दीं। सोने की कुल्हाड़ी देखते ही वह व्यक्ति बोला—"यही मेरी कुल्हाड़ी है।" देवता यह सुनते ही अदृश्य हो गए और एक आकाशवाणी हुई—"मूर्ख असत्य बोलकर तूने देवशक्तियों को कुपित किया है। अब तेरी लोहे की कुल्हाड़ी भी जलमग्न ही रहेगी।" वह व्यक्ति अपना एकमात्र धन गँवाकर घर लौटा। देवता देते तो हैं, पर उनके अनुदान सत्पात्रों को ही मिलते हैं, झूठे-मक्कारों को केवल हाथ मलते रह जाना पड़ता है।

परमवंदनीया माताजी की अमृतवाणी

गायत्री-उपासना का प्रतिफल

परमवंदनीया माताजी के उद्बोधन न केवल गायत्री परिजनों में संकल्प संचार करने का कार्य करते हैं, वरन सामान्य जन के भीतर भी आध्यात्मिक पथ पर चलने की उत्कंठा उत्पन्न करते हैं। अपने इस प्रस्तुत उद्बोधन में परमवंदनीया माताजी यह बताती हैं कि किस तरह से गायत्री-उपासना ने परमपूज्य गुरुदेव के जीवन में उस उच्चतम आदर्श को प्रतिष्ठित किया, जिसको प्राप्त करने का प्रयत्न हर गायत्री परिजन को करना चाहिए। वंदनीया माताजी कहती हैं कि मात्र तपस्या करना ही आध्यात्मिक सिद्धियों को प्रदान करने का आधार नहीं होता; क्योंकि ऐसा रावण से लेकर अन्य असुरों ने भी किया था। तपस्या तभी सार्थक हो पाती है, जब उसके साथ व्यक्तित्व को परिशोधित करने का भाव जुड़ा हुआ हो। परमपूज्य गुरुदेव का उदाहरण प्रस्तुत करते हुए वे कहती हैं कि गुरुदेव ने अपने जीवन में गायत्री-उपासना के मर्म को अवतरित किया और इसीलिए उन सारी शक्तियों को प्राप्त करने के अधिकारी बन सके, जिसके लिए आज वे सारे विश्व में जाने जाते हैं। आइए हृदयंगम करते हैं उनकी अमृतवाणी को.....

गुरुदेव की सफलता का रहस्य

गायत्री मंत्र हमारे साथ-साथ—

ॐ भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात्।

बेटियो, आत्मीय प्रज्ञा परिजनो!

आपको मैं गुरुजी की सफलता का रहस्य बताना चाहती हूँ। मैं चाहती हूँ कि अपने परिजनों को बजाय इसके कि मैं कोई श्लोक सुनाऊँ और लंबी-चौड़ी कहानी कहती रहूँ, यह नहीं; बल्कि उनके जीवन का सार, उनकी उपासना का सार, उनकी साधना का सार और उनकी आराधना का सार मैं आप लोगों के सामने प्रस्तुत करना चाहती हूँ। शायद आपने सुने भी होंगे, पर अच्छाइयाँ बार-बार सुननी चाहिए, बुराई नहीं सुननी चाहिए। मैं आपसे निवेदन करूँगी कि आप उनके बाल्यकाल से लेकर के और अब तक के उनके दांपत्य जीवन के, उनके गृहस्थ जीवन के और उनके सारे जीवन के, उनके राष्ट्र जीवन के कुछ तथ्य आपके सामने रखना चाहती हूँ, उन्हें सुनें।

बाल्यकाल से उन्होंने अपने जीवन को किस तरह से मोड़ दिया? जो खाने और खेलने की उम्र होती है। बाल्यकाल से ही उनके मन में भगवान के प्रति अगाध आस्था, अगाध निष्ठा, अपार श्रद्धा भरी पड़ी थी।

गाँव के मंदिर में उन्होंने उपासना की और गायत्री मंत्र जप किया, जो सार है। गायत्री मंत्र कोई जातीयता, सांप्रदायिकता नहीं, वह मानवमात्र के लिए है। इसके 24 अक्षर हैं।

गायत्री-उपासना का प्रतिफल

गायत्री मंत्र के 24 अक्षरों में जो शिक्षा भरी पड़ी है, यदि इसके एक-एक अक्षर का ज्ञान हो जाए और अपने जीवन में उसे उतारा जाए, तो उसका व्यक्तित्व इस तरीके से ऊँचा बढ़ता चला जाता है, जो आपके सामने है। बाल्यकाल से उनके मन में उपासना के प्रति लगाव पैदा हुआ, तो गायत्री की उपासना की। गायत्री माता ने अपना स्वरूप दिया भी, जो उदार व करुणा भरी होती है, सरल होती है। माँ के प्रति सहज श्रद्धा उत्पन्न होती है, किसी भी रूप में माँ को पा सकता है।

भगवान की हमारे यहाँ उपासना किसी-न-किसी रूप में हर संप्रदाय करता है। चाहे वह ईसाई हो, चाहे मुसलमान हो, चाहे पारसी हो, चाहे किसी भी संप्रदाय का क्यों न हो? उपासना का अपने आप में बड़ा महत्त्व है। उपासना का मतलब होता है ईश्वर के समीप बैठना, जुड़ जाना, एकाकार हो जाना, उसकी विराटता अपने अंदर समा लेना।

ये होता है—आगे उपासना के पथ पर बढ़ने का तरीका। इस तरह से वे गुँथ गए अपने गुरु से, गायत्री माता से कि जीवनपर्यंत तक उन्होंने कभी पीछे की ओर नहीं देखा, आगे की ओर बढ़ते चले गए। आप यह न समझें कि कठिनाइयाँ आपके सामने ही आती होंगी, उनके सामने कभी नहीं आई हों, ऐसा नहीं। समस्याओं से भरा जीवन, कठिनाइयों से भरा जीवन, बड़ा कष्टसाध्य जीवन उन्होंने जिया।

आज जो आप उनकी प्रसिद्धि देख रहे हैं, यह उनकी उपासना का फल है, उनकी साधना का फल है। जो उन्होंने अपना व्यक्तित्व बनाया उपासना से। उपासना का कोई फल नहीं होता? मैं पूछती हूँ, क्यों नहीं होता? पहले आप यह बताइए सारी जिंदगी हो जाती है माला घुमाते-घुमाते; लेकिन जैसे थे, वैसे ही जैसे-के-तैसे ही बने रहे, तो फिर उस उपासना से क्या लाभ?

तपस्या के दुरुपयोग के परिणाम

रावण कैसा बलशाली था? क्या कहने का, चारों वेदों का ज्ञाता, तेजस्वी, बलशाली, सारे-के-सारे गुण थे; लेकिन एक ही दुर्गुण सबसे ज्यादा था। वह क्या था कि जो भी वरदान—शक्ति उसे मिली, उसका दुरुपयोग करता चला गया, इसी से

आकाश से उतरती नन्हीं बूँदों को देख अग्नि की लपटें अट्टहास कर उठीं और दर्प से बोलीं—"नादान बूँदो! क्यों अपने आप को नष्ट करने दौड़ी चली आ रही हो?"

बूँदें मुस्कराईं और एक-एक करके सब आग के अंदर समा गईं। देखते-देखते आग का नामोनिशान ही मिट गया। सम्मिलित और संगठित प्रयास से बड़ी-से- बड़ी चुनौती का सामना किया जा सकता है।

उसका सर्वनाश हो गया। भस्मासुर का भी यही हुआ था। भस्मासुर को वरदान मिला था शंकर जी का; लेकिन वह तो पार्वती के पीछे पड़ गया। फिर क्या हुआ?

यह तो सब जानते ही हैं, इसलिए मैं उस गहराई में नहीं जाऊँगी; क्योंकि बात मुझे बहुत कहनी है। उसके पीछे पड़ गया, उसे वरदान था कि वह अपने आप मरेगा, उसे कोई नहीं मारेगा।

हाँ! व्यक्ति अपने आप ही मरा करता है, इसमें कोई शक नहीं। जिंदा भी मरा करते हैं। एक तो जो आता है—उसे भगवान ने शरीर दिया है, उसे कभी-न-कभी जाना ही है, पर कुछ ऐसे होते हैं जो जिंदे होने पर भी मुरदा के समान होते हैं। वह यह होता है कि हमारे अंदर की जीवटता चली जाती है। हमारे अंदर की संवेदना घुलती हुई चली जाती है, पता नहीं, हम तब कौन हो जाते हैं ?

भगवान ने नृत्य करवाया और कहा सिर पर हाथ रख और तू नाच, जब नाच पूरा हो जाएगा, तो शादी हो जाएगी। सिर पर हाथ रक्खा और वह जलकर भस्म हो गया। मैंने कहा कि तपस्या के दौरान जो उनको मिला, उन्होंने उसका दुरुपयोग किया, तो वे मिट्टी में मिल गए। इसी तरह की अनेकों कहानियाँ हैं।

व्यर्थ गया वरदान

एक ब्राह्मण-ब्राह्मणी और उसका बच्चा थे। वे तपस्या में लीन थे। पार्वती बोलीं—ऐसा करिए इतने बैठे हैं भक्त लोग और तपस्या कर रहे हैं, आप इनको वरदान क्यों नहीं देते ? तो उनने कहा कि पार्वती ऐसे जंजाल में मत पड़ो; इनके अंदर भक्ति नहीं है, ये सब क्या कर रहे हैं ? खा-पी नहीं रहे हैं, एक पैर से खड़े हैं गंगा जी के किनारे। लंबे-चौड़े तिलक लगाए हैं, फिर क्यों ऐसा कर रहे हैं ?

उनने कहा—यदि थोड़ी भी भक्ति इनमें रही होती, तो इनका जीवन पवित्र गंगा की तरह निर्मल रहा होता। इनमें भक्ति नहीं। इन्हें वरदान दो। देखिए पहले ब्राह्मणी ने कहा—मुझे युवती बना दो और वह वरदान पाकर युवती बन गई, तो ब्राह्मण जो बूढ़ा था, वह कुड़कुड़ाया और उसने कहा—अच्छा बुढ़ापे में उस पर जवानी सवार हुई है, अच्छा देखा जाएगा।

शंकर जी बोले—भाई आपको क्या हो गया ? आप भी वरदान माँग लीजिए। उनने कहा कि लाइए इसे सुअरिया बना दो। अब वह गों-गों करती हुई फिर रही थी और बच्चा रो रहा था। शंकर जी बोले—तू काहे को रोता है, तू भी ले जा वरदान। देखिए, माँ जैसी थी, वैसी ही बना दीजिए। लो! तुम्हारी माँ जैसी थी, वैसी ही बना देता हूँ।

इसका सार अब आप समझ गए होंगे कि उन्होंने जो उपासना की, इतनी तपस्या में अपना शरीर गलाया, उसका प्रतिफल क्या मिला ? उसका प्रतिफल यह मिला कि जैसा दृष्टिकोण था, जैसा चिंतन था, उसका वैसा ही फल मिलता है। पति-पत्नी फिर खाली हाथ ही चले गए।

क्या है तपस्या ?

क्या तपस्या इसी को कहते हैं ? तपस्या वह दीपक है, वह अग्नि है, जिस प्रकार अग्नि के पास बैठने से गरमी आती है। चंदन जहाँ पैदा होता है, वहाँ झाड़ियाँ भी होती हैं, उस चंदन से वे भी सुगंधित होती चली जाती हैं। खुशबू किसके अंदर होगी ? भक्त के अंदर होगी, उस उपासक के अंदर होगी, उस संत के अंदर होगी, जो अपनी सुगंधि सारे संसार को बाँटता हुआ चला जाए और चला जा रहा है। उससे सभी सुगंधित होते चले जाते हैं, ऐसी उपासना होती है।

उनने अपने जीवनकाल में जो उपासना आरंभ की, तो सारा घर विरोधी था। उन्होंने विरोध की परवाह नहीं की और 24-24 लक्ष के पुरश्चरण उन्होंने जौ की रोटी और छाछ के साथ खाकर यह कठिन तपश्चर्या की। गायत्री तपोभूमि की स्थापना हुई और उन्होंने उस उपासना से अपने को ऐसा बना लिया—कोमल, पवित्र, दूरदर्शी ऐसा प्रेरणा का स्रोत न मालूम बुद्धि कहाँ से आती चली गई ? भगवान की कृपा जिसके साथ हो, जिसके साथ

भगवान जुड़ा हुआ हो, उसके अंदर कषाय-कल्मष रह सकते हैं क्या? नहीं, रह सकते।

यदि उपासना करनी है, भगवान से जुड़ना है, भगवान की जो संपत्तियाँ हैं, उनके अधिकारी बनना है, तो पहले अपने मन की मलिनता को निकालना पड़ेगा। जो झाड़-झंखाड़ अपने अंदर उगे हैं, मलिनताएँ बसी हैं, कूड़ा-करकट है, तो भगवान बैठेगा कहाँ? बताइए, बैठने के लिए साफ-सुथरी जगह चाहिए। उससे संबंध स्थापित करने के लिए नम्र होना चाहिए। किसी मित्र के पास जाते हैं, किसी अधिकारी के पास जाते हैं, तो क्या करते हैं? नम्र होते हैं उसके प्रति, सहज ही श्रद्धा करते हैं, तो भगवान उससे भी घटिया है क्या?

भगवान की दोस्ती बड़ी लाभदायक है और ऐसी लाभदायक होती है कि उसका प्रतिफल आपके रूप में दिखाई पड़ता है। उनकी उपासना की, अपने जीवन का परिष्कार किया, अपने को साधा, तो व्यक्तित्व ऐसा बनता हुआ चला गया कि बस, आनंद आ गया।

व्यक्तित्व बनाती है तपस्या

बेटे! देखने वाले यदि प्रेरणा न ले सकें, तो बात अलग है अन्यथा जो भी संपर्क में आता-जाता है, तो जैसे सोने को तपाकर अनेक आभूषण बनते हुए चले जाते हैं, वैसा ही बन जाता है। तपश्चर्या से जीवन बनता है, व्यक्तित्व बनता है। यदि व्यक्तित्व नहीं बना, तो यह जान लेना चाहिए कि इसकी उपासना एकांगी है। एकांगी उपासना से क्या बनेगा? मुक्ति मिलेगी? हमें तो विश्वास नहीं कि मुक्ति मिलेगी।

यदि मुक्ति मिलती है, तो हमें इसी जीवन में मिलती है, तत्काल मिलती है और कहीं यदि स्वर्ग है, तो इसी पृथ्वी पर ही स्वर्ग है। ऊपर किसने देखा है कि स्वर्ग में जाएँगे और भाई मुसलमान तो यह कहते हैं कि शराब की नहरें बहती हैं। वहाँ हूर और गुलमा रहते हैं और हिंदुओं का कहना है कि वहाँ शेषनाग की शय्या पर पड़े रहो और क्षीरसागर में खीर खाओ। अच्छा दो-चार दिन खा लें, फिर देख तेरे पेट की क्या हालत होती है? तो क्या वहाँ खीर खाने जाएँगे? उसके लिए वहाँ स्वर्ग होता है, हमें यह स्वर्ग चाहिए, जहाँ व्यक्ति हमारा स्वर्ग में निवास करता हो। वह है स्वर्ग।

ऐसे स्वर्ग का क्या करेंगे? वही उन्होंने बीड़ा उठाया और अपने अंदर यह दृढ़ संकल्प किया कि

सूर्य नमस्कार करते एक व्यक्ति से राहगीर ने पूछा—"भाई! डूबते सूरज से क्या प्रार्थना कर रहे हो?" वह व्यक्ति बोला—"बंधु! सूरज कभी डूबता नहीं, पृथ्वी ही घूम जाती है। यदि हमारी पात्रता विकसित हो जाए तो दैवी अनुग्रह हर क्षण मिलते रहते हैं।"

व्यक्ति के अंदर देवत्व का उदय होना चाहिए। बाल्यकाल से ही उनका प्रयास रहा। मैंने छोटेपन में सुना है कि एक हरिजन महिला थी, जहाँ उनने सेवा की। उसको अम्मा कहते थे। मैं दूसरा प्रसंग सुनाऊँगी, पहले यह याद आ गया कि उन्होंने उपासना, साधना और आराधना पर जोर दिया।

उपासना-साधना की समीपता, साधना अपने व्यक्तित्व को ऊँचा उठाना और आराधना मानव जाति की। उन्होंने तीनों का सम्मिश्रण कर दिया। त्रिवेणी बना लिया और उस त्रिवेणी में जब स्नान किया था तब क्या-से-क्या बनते हुए चले गए और

जो भी आए नतमस्तक होते हुए चले गए। चाहे वह विरोधी ही क्यों न हों? वे भी नतमस्तक हुए; क्योंकि उनकी व्यवहार कुशलता के सामने जो उन्होंने साधना की थी, जो उनका वातावरण था।

चिंतन, चरित्र और व्यवहार

कल मैंने कहा था कि जिसका जैसा चिंतन होता है, वैसा ही उसका चरित्र होता है, चरित्र जैसा होता है, वैसा ही व्यवहार होता है और जैसा व्यवहार होता है, वैसा ही वातावरण बनता है और अपने आप बनता चला जाता है। गंदी जगह आप बैठेंगे, तो आप उसी से प्रभावित होंगे और अच्छी जगह किसी भले आदमी के साथ बैठेंगे तो आपके अंदर अच्छाइयाँ आएँगी, निश्चय ही आएँगी। क्यों नहीं आएँगी?

बेटे! अम्मा की उन्होंने सेवा की, हरिजन बस्ती में जाकर के उन्होंने जो शंख फूँका, शायद इसमें जो हमारे साथ बैठे परिजन रूढ़िवादी हों, आपको यह पसंद न हो, तो कृपा करके इसे निकाल दीजिए कि यह तथ्य है, सही है, आपका जो चिंतन है घटिया, वह सड़ा हुआ है। व्यक्ति-से-व्यक्ति जुड़ता है। आज हम काटते हुए चले जाते हैं; लेकिन बनाना नहीं सीखा है।

विश्व में सात ऋषि थे और सात ऋषियों ने ही सारे संसार का संचालन किया था। आज हमारे राष्ट्र में जो 56 लाख साधुओं का आँकड़ा है, यह बहुत पुराना है। 50 लाख साल पुराना। अब तो 80 लाख हो गए होंगे। वह कौन संत हैं, हम जैसे महान संत।

महान संतों की कोई कमी है? कमी नहीं है, पर मैं यह कहती हूँ कि कृपा करके क्षमा कर दिया जाए, मुझे कोई मेरी बात गलत निकल गई हो, अच्छी न लग रही हो, पर मैं मन खोलकर अपने बच्चों से कहने आई हूँ, किसी अन्य से कहने नहीं आई हूँ। मैं तो इनके दिमाग धोने आई हूँ, अब वह मुझे कहने दीजिए। मुझे कहने दीजिए कि यह सड़ा-गलापन निकालना ही पड़ेगा। तो उन्होंने जाकर हरिजन बस्ती में सत्यनारायण की कथा कही। घर वाले विरोधी हुए। उनने अछूतों जैसा व्यवहार किया। कहा बाहर बैठे रहो। खाना नहीं मिलेगा। नहीं मिलेगा, तो कोई बात नहीं, बाहर सो लेंगे। जो भी कठिनाइयाँ आनी चाहिए, हर प्रकार की कठिनाइयाँ आईं, पर उन्होंने कदम पीछे नहीं रखा।

स्वतंत्रता आंदोलन में जो उन्होंने कार्य किया, उपासना का परिष्कृत रूप आपको बता रही हूँ कि उपासना से उनका स्वरूप कितना परिष्कृत होता हुआ चला गया। कैसे प्राप्त नहीं होता है? सब कुछ प्राप्त होता है। मैं तो कहती हूँ कि धन-दौलत पीछे-पीछे फिरती है। ऐसे क्यों फिरती है? ऐसा क्यों होता है? सारी जिंदगी हाथ मलते-मलते रह जाते हैं। कमाते-कमाते रह जाते हैं। उसी नारकीय योनि में चले जाते हैं, ये क्या बात हुई? इसीलिए हुई कि संत जो होता है, वह सारे विश्व का होता है, वह सारे विश्व का पिता होता है। सारे विश्व का होता है, जो भी होता है, वह उसे बनाने का प्रण करता है, इसलिए कोई कमी नहीं पड़ती।

गुरुजी के जीवन में जरूर यह कमी आई, हमारे जीवन में भी आई। जो आर्थिक कठिनाई आई, उसको हमने कभी महत्त्व नहीं दिया। ऐसा नहीं था कि ये जमींदार के लड़के थे। सब कुछ था; लेकिन उन्होंने कसम खाई थी कि नहीं, बाप की कमाई से हमें नहीं लेना। तो क्या करना है? बाप की कमाई, बाप के श्राद्ध-तर्पण में जाएगी। हमने कमाई नहीं, तो हमें इसमें कोई अधिकार नहीं।

गुरुदेव का विराट स्वरूप

उन्होंने नहीं छुआ, इसकी मैं साक्षी हूँ, परिवार वाले साक्षी हैं और किसी ने तो नहीं देखा, पर सारी

जमींदारी केवल गायत्री तपोभूमि के लिए दान कर दी। रहे मेरे जेवर, सन् 1956 की पूर्णाहुति में 108 कुंडीय यज्ञ हुआ था, उसमें गुरुजी ने कहा—तुम्हें मोह है, मैंने कहा नहीं, मेरे लिए आप भगवान हैं, मुझे नहीं मालूम भगवान कहाँ है; लेकिन मैंने एक व्यक्ति को देखा, मैंने उसका विराट स्वरूप देखा।

जब मैंने विराट स्वरूप उसके अंदर झाँका, तो मैं समर्पित हो गई कि मैं तो उनकी पत्नी हूँ; लेकिन पत्नी कम समर्पण ज्यादा। कदम-से-कदम मिलाना है। मुझे इससे क्या करना है? मुझे मेरा भगवान, मेरा ईमान, भगवान से जुड़कर मेरा ईमान रह जाता है, यह हमारा भगवान और हमें क्या आवश्यकता है? जब सन् 1971 में गायत्री तपोभूमि से हम चले, तो हम एक नया पैसा लेकर नहीं चले। भगवान हमारा साक्षी है, केवल अखंड दीपक को लेकर चले थे।

इसके बारे में गुरुजी कहते थे कि यह हमारा सिद्ध दीपक है। यह हमारे लिए प्राणों से भी ज्यादा प्रिय है और इसके द्वारा हमने जो ज्ञान प्राप्त किया है, वह हमारी धरोहर है। हम इसको ले जाएँगे। इस संपत्ति को ले जाएँगे। बाकी की सब छोड़ जाएँगे। सब छोड़कर के आए और उन्होंने पीछे मुड़कर यह नहीं देखा कि गायत्री तपोभूमि कैसी है? इसका विस्तार हुआ या क्या हुआ?

जब देशभर में दो हजार शक्तिपीठें बनीं। उनके उद्घाटन के लिए सन् 1980-81 में बाहर गए और सारे देश का भ्रमण किया। गायत्री तपोभूमि जाने के लिए रास्ता भी मिला। मथुरा गाड़ी रुकी, वहाँ परिजनों ने कहा, बच्चों ने कहा, गायत्री तपोभूमि वालों ने कहा—गुरुजी चलिए, उन्होंने कहा कि बेटा मैंने आगे का रास्ता सीखा है। पीछे हटना नहीं सीखा। जो छोड़ दिया, वह छोड़ दिया। उससे कोई लगाव नहीं, पैसे से लगाव नहीं।

अरे माताजी कल तो ऐसा-ऐसा बोल रही थीं, आज क्या बोल रही हैं? हम यह सुनने थोड़े ही आए थे। हमें कोई चटपटी कहानियाँ सुनाओ, अच्छा वह भी हम सुना देंगे, उसके लिए आप धैर्य रखिए; लेकिन इससे आपको प्रेरणा मिलेगी। उससे आपको ऐसा लगेगा कि माताजी ने अच्छी कही। इसमें तो हमें हँसा डाला सबको, इसमें तो हमें रुला डाला।

गुरुदेव की तपस्या से बना गायत्री परिवार

नहीं, बेटे! न मैं रुलाने आई हूँ, न हँसाने आई हूँ। मैं तो आपको उस ओर ले जाना चाहती हूँ, जिस ओर सारी जिंदगी तिल-तिल आपका पिता गलता हुआ चला गया और एक दिन गायत्री माता में पूर्ण रूप से समा गया। उसने अपनी तपस्या के द्वारा, अपनी साधना के द्वारा, अपनी आराधना के द्वारा यह करके दिखाया। साबित किया कि आज जो आपका संगठन है, इसके बराबर कोई भी संगठन नहीं है, बड़े शब्द हमें कहने दीजिए। मैं कहती हूँ, वो तो नहीं कह रहे। मैं कहती हूँ कि जिसके साथ ईश्वरीय शक्ति है, वह दैवी शक्ति साथ है, भगवान साथ है, तो हर कार्य पूरे होते हुए चलते ही गए।

मैंने अभी स्वतंत्रता आंदोलन का थोड़ा-सा हिस्सा आपको सुनाना चाहा था, बीच में ही छूट गया। उसमें जो भी आंदोलन सफल हुए, उसके साथ में ईश्वरीय प्रेरणा है। ईश्वरीय शक्ति साथ हुई है, अन्यथा एक व्यक्ति का काम है इतना बड़ा कार्य। कल-परसों एक अधिकारी आए। उन्होंने कहा माताजी क्या खरच होगा? भाई! मुझे तो कुछ मालूम नहीं, खरचा कितना हुआ और कितना होगा? क्या आपको नहीं मालूम?

बेटा! मुझे एक ही बात मालूम है कि जिसके साथ हम जुड़े हुए हैं, हमको पूरा विश्वास और पूरी श्रद्धा है, टस-से-मस हमारी श्रद्धा नहीं हो सकती। तब हमारा कार्य पूरा क्यों नहीं होगा? उनका कार्य

अपने आप पूरा कराएँगे। हो रहा है और होता रहेगा। शानदार जो भी आंदोलन पूरे होते रहे हैं, उसमें भगवान की शक्ति होती है उनके साथ। गायत्री माता, उनका गुरु, उनके साथ है, इसलिए प्रत्येक कदम आगे बढ़ते चले गए। जिनको विश्वास नहीं होता, उनकी उपासना कभी फलीभूत नहीं होती।

भगवान शिव से प्रेरणा लें

चाहे आप सोमवार का व्रत करो, चाहे मंगल का व्रत करो, चाहे शंकर जी के ऊपर आक (मदार) के पत्ते, धतूरा कुछ भी उनको खिला आओ, पर आपके आक के पत्तों से और धतूरों से शंकर जी खुश होने वाले नहीं हैं। आचरण से प्रसन्न होंगे।

शंकर जैसा परोपकारी, जिसने दूसरों के हित के लिए जहर पी लिया। समुद्रमंथन में अनेक रत्न निकलते हुए चले गए, पर विष का क्या हो? विश्व के कल्याण के लिए उन्होंने उस विष को स्वयं धारण किया। कहाँ वह हिम्मत, साहस है, क्या? नहीं, साहब! हम तो धतूरा खिला आएँगे शंकर जी को। शंकर जी प्रसन्न होंगे। भाई तू तो बहुत चालाक है, पर शंकर जी बहुत होशियार हैं। धोखा देना चाहते हैं आप शंकर जी को। धोखा मत दीजिए, उनसे शिक्षा लीजिए।

वह शीतलता के प्रतीक हैं। क्या आपके अंदर इतनी शीतलता है? क्या ज्ञान की गंगा जो अनवरत बहती चली जा रही है। अभी-अभी आपने देखा कि लड़कों ने गाया, वह सारा-का-सारा गुरुजी पर लागू होता है कि उन्होंने सारी जिंदगी ज्ञान की गंगा बहाने के लिए अपनी कलम को माँ समझा, अपना आराध्य समझा। गायत्री माता को आराध्य समझा, उससे ज्यादा कम नहीं, कलम को समझा जो कि कलम क्रांति पैदा कर सकती है कि परिवर्तन कर दे, व्यक्ति को कुछ बना डाले। जो नारकीय जिंदगी जी रहे थे, वो आज यह अनुभव करते हैं कि हमको ऐसी दिशा मिली। जिनको उनके दर्शन नहीं मिले, वे आज भी बिलखते चले आते हैं।

अभी अमेरिका का एक लड़का आया, वह लिपटकर रोने लगा। पहले तो मैं कुछ कहने लगी— बेटा! रहने दे, गुरुजी तो साथ रहते हैं, ऐसा कैसे समझता है? वास्तव में हैं भी। वास्तव में हम समझते हैं कि हम गुरुजी से जुड़े हैं, पर आपको कुछ त्याग करना पड़ेगा।

त्याग की कसौटी हमको हर परिजन दे। उनको त्याग का पाठ पढ़ाया है कि आप त्याग करिए। मानव मात्र की सेवा के लिए, उपासना के लिए समय निकालिए और साधना के लिए अपने व्यक्तित्व का परिष्कार कीजिए। आप जहाँ थे, वहीं बने हुए हैं, आगे क्यों नहीं बढ़े? विद्या को आपने ऐसा कैसे समझ लिया? आपके मस्तिष्क की, आपके हृदय की ऊँचाई बढ़नी चाहिए और सेवा के लिए हमारे अंदर करुणा और संवेदना पैदा होनी चाहिए।

जहाँ संवेदना, वहाँ स्वर्ग

जहाँ करुणा, संवेदना होगी, वहाँ स्वर्ग होगा, चाहे वह परिवार हो, चाहे वह समाज हो, चाहे राष्ट्र हो। जहाँ संवेदना और करुणा जुड़ जाती है, सहज ही हमारी गति बढ़ जाती है। अभी जो एक महीने से आप लोग हैं या अभी आए हैं, आपके सामने इतनी कठिनाइयाँ आई हैं। क्या-क्या आंदोलन चल रहे हैं, किन-किन कठिनाइयों का सामना करके आप आए हैं? जो गाड़ी 24 घंटे में आती है, वह 60-61 घंटे में आई है। यह क्या है? बेटे! जरा बताना?

यह उस व्यथा का, श्रद्धा का, करुणा का और संवेदना का बीज है, जो आपको यहाँ तक ले आया है। अब जो आपकी संवेदना और श्रद्धा है, वह केवल गुरुजी और माताजी तक सीमित

नहीं रहनी चाहिए। हम व्यक्ति नहीं हैं, आप यह मत समझना। जब बच्चे आते हैं, कई बार रोते चले आते हैं।

मुझे बहुत बुरा लगता है, दया भी आती है और यह भी आता है कि वे शरीर से जुड़े थे, यह स्वाभाविक भी है कि इतनी तड़पन तेरे अंदर है, तो इसे सही दिशा में क्यों नहीं लगा रहा है? जो गुरुजी का कार्य है, इसमें क्यों नहीं लग जाता है? इसमें तपता क्यों नहीं है, तू निखरता क्यों नहीं है? तू कुंदन क्यों नहीं बनता है? तू लोहे का क्यों है? लोहा नहीं बनना चाहिए, आपको सोना बनना चाहिए, आपको हीरा बनना चाहिए, आपको क्वांटिटी नहीं, क्वालिटी बनना चाहिए।

गुरुजी! क्वालिटी पसंद करते थे, उन्होंने सोसायटी का जीवन जिया है। साधारण वेश में वे एक बार कहीं जा रहे थे। बाहर सारे परिजन माला लेकर खड़े थे। उसी डिब्बे में एक और कोई सज्जन बैठे थे, वह थर्ड क्लास के डिब्बे में थे। उनने कभी लग्जरी का जीवन नहीं जिया था।

उनने कहा था—जो पैसा समाज के काम में आए, राष्ट्र के काम में आए, उसको हम लग्जरी में व्यतीत करें, नहीं! वहाँ जाकर पहुँचे तो पहले, तो वे समझ रहे थे कि इतनी भीड़ क्यों है कि जो मालाएँ लिए खड़े हैं, कोई मिनिस्टर होगा। जैसे ही वे रेल के डिब्बे से निकले, उसने कहा कि इनके लिए इतनी जनता, इनमें इतनी विशेषता क्या है? आपस में कानाफूँसी कर रहे थे। उनमें से एक सज्जन हमारे परिजन थे।

उन्होंने कहा कि इनमें वो विशेषता है, यदि इनकी विशेषताओं का एक कण भी कोई ग्रहण कर जाए, तो वह व्यक्ति धन्य हो जाएगा, उनके अंदर कभी अहंकार नहीं आया, कभी उनके अंदर मलीनता नहीं आई। हर व्यक्ति को ऊँचा उठाते हुए, खुद भी ऊँचे उठते गए और औरों को भी ऊँचा उठाते गए। उदाहरणार्थ मैं आपके सामने खुद ही बैठी हूँ। आप मुझसे कुछ शिक्षा ले सकें, तो आपका जीवन धन्य हो जाएगा।

॥ ॐ शांतिः ॥

एक दृष्टिहीन व्यक्ति हाथ में लालटेन लिए अँधेरी रात में रास्ते के निकट एक बड़े गड्ढे के पास खड़ा था और रास्ते से गुजरते लोगों से चिल्ला-चिल्लाकर कह रहा था—"भाइयो! उधर बड़ा गड्ढा है। उधर से न जाना।" राह गुजरते एक व्यक्ति ने उससे कहा—"क्यों भाई! तुम्हें स्वयं दिखाई नहीं पड़ता, फिर यह लालटेन हाथ में लिए क्यों खड़े हो?" अंधा व्यक्ति बोला—"बंधु! मेरी बाहर की आँखें नहीं हैं तो क्या हुआ, हृदय तो खुला है। बहुत से ऐसे हैं, जो आँखें होते हुए भी इस गड्ढे में जा गिरेंगे। यह लालटेन उन्हीं को मार्ग दिखाने के लिए है।"

विश्वविद्यालय परिसर से-212

मानवीय गरिमा का गौरव केंद्र बना विश्वविद्यालय

'ईश्वर सृष्टि में जो भी व्यक्ति उत्पन्न करता है, उन सबको एक जैसा ही उत्पन्न करता है। आगे चलकर वे अपने ज्ञान-अज्ञान के कारण ही अच्छे-बुरे बन जाते हैं। धन, वैभव और पद-प्रतिष्ठा अच्छाई का प्रमाण नहीं हैं। अच्छाई के लक्षण तो हैं सेवा, सहायता, सहयोग, सहानुभूति, प्रेम और उदारता आदि। जिस व्यक्ति में ये गुण हैं, उसे अच्छा ही कहना होगा फिर चाहे उसके पास धन-वैभव और पद-प्रतिष्ठा हो या न हो। पूज्य गुरुदेव का यह कथन एक ओर जहाँ मानवीय गरिमा की ओर इंगित करता है तो वहीं दूसरी ओर उसकी यथार्थ कसौटी को भी दरसाता है।

ज्ञान के सर्वोपरि महत्त्व पर प्रकाश डालते हुए वे आगे कहते हैं कि 'ज्ञान व्यक्ति को शीलवान, शिष्ट और विनम्र बनाता है। इन गुणों का परिणाम समाज में आदर, सम्मान और सहयोग के बिना कुछ हो ही नहीं सकता। जो समाज में इस प्रकार की स्थिति पा लेता है, उसे आत्मविकास में बड़ी सुविधा रहती है। यह आत्मविकास परमानंद की ओर आने वाला आध्यात्मिक मार्ग है। भगवान राम, कृष्ण, गौतम बुद्ध, ईसा और सुकरात आदि जो भी युग-प्रवर्तक महात्मा और महापुरुष हुए हैं, वे सब ज्ञान का विकास करके ही वैसे बन सके हैं।'

ज्ञानरूपी इसी महान तत्त्व की आवश्यकता की पूर्ति पूज्यवर की दिव्य संकल्पना देव संस्कृति विश्वविद्यालय में निहित है। अपने आप में अनोखा एवं हर माने में विशिष्ट यह विश्वविद्यालय समूचे विश्व की युवापीढ़ी के जीवन को सफल एवं सार्थक बना रहा है।

सनातन संस्कृति के दिव्य ज्ञान की परंपरा के वाहक देव संस्कृति विश्वविद्यालय के ज्ञान के आलोक से लाभान्वित होने हाल ही में डॉ. हाँग येन, निदेशक, एशिया पेसिफिक के साथ वियतनाम से 12 योग संस्थानों के संस्थान प्रमुखों का चार दिवसीय कार्यक्रम, भारतीय योगपद्धति, भारतीय संस्कृति एवं आयुर्वेद पठन-पाठन के लिए आगमन हुआ।

विश्वविद्यालय आगमन पर उन्होंने माननीय प्रतिकुलपति जी से भेंट की एवं तत्पश्चात उन्होंने देव संस्कृति विश्वविद्यालय का भ्रमण किया एवं विश्वविद्यालय में हो रही गतिविधियों से अवगत हुए। विश्वविद्यालय की गतिविधियों से प्रभावित होकर उन्होंने भविष्य में देव संस्कृति विश्वविद्यालय से विद्यार्थियों के शिक्षा उपरांत उन्हें अपने देश में योग संस्थानों में योगप्रशिक्षक के रूप में चयनित करने के लिए भी रुचि दिखाई।

विशिष्ट अतिथियों के विश्वविद्यालय आगमन के क्रम में पूर्व केंद्रीय मंत्री एवं उत्तराखंड के पूर्व मुख्यमंत्री माननीय श्री रमेश पोखरियाल जी एवं श्री ओमप्रकाश जमदग्नि जी का आगमन हुआ। देव संस्कृति विश्वविद्यालय आगमन पर माननीय मंत्री जी ने आदरणीय प्रतिकुलपति महोदय से शिष्टाचार भेंट की। भेंटवार्त्ता के दौरान कई बिंदुओं पर चर्चा हुई, जिनमें भारत और उत्तराखंड राज्य को और अधिक विकसित किस प्रकार किया जा सकता है, इस पर उन्होंने विचार-विमर्श भी किया।

गणमान्यों के देव संस्कृति विश्वविद्यालय परिसर में आगमन के क्रम में हाल ही में माननीया

श्रीमती नीता पोखरेल आर्याल जी, वित्तमंत्री, नेपाल का भी आगमन हुआ। अपने आगमन पर उन्होंने आदरणीय प्रतिकुलपति जी से शिष्टाचार भेंट की। भेंटवार्त्ता के दौरान उन्होनें कई विषयों पर चर्चा की। साथ ही विश्वविद्यालय में चल रही गतिविधियों को जाना व सराहना भी की।

देव संस्कृति विश्वविद्यालय परिसर में विगत दिनों पूर्व रेल मंत्री श्री सुरेश प्रभाकर प्रभु जी का आगमन हुआ। अपने आगमन पर उन्होंने माननीय प्रतिकुलपति जी से भेंट कर विविध विषयों पर चर्चा की। उन्होंने देव संस्कृति विश्वविद्यालय स्थित प्रज्ञेश्वर महाकाल के दर्शन और विश्वविद्यालय परिसर का भ्रमण भी किया व चल रही विभिन्न प्रकार की गतिविधियों की सराहना की।

अवगत हों कि माननीय श्री प्रभु जी भारतीय राजनीतिज्ञ और भारत के पूर्व वाणिज्य मंत्री भी रह चुके हैं। वे पेशे से सनदी लेखाकार हैं और भारतीय सनदी लेखाकार संस्थान के सदस्य भी हैं।

पत्रकारिता के सशक्त माध्यम से युगऋषि के संदेश को जन-जन तक पहुँचाने के उद्देश्य से देव संस्कृति विश्वविद्यालय परिसर के मुख्य भवन श्रीराम भवन में एक नए क्रोमा स्टूडियो का उद्घाटन किया गया। इस शुभ अवसर पर देव संस्कृति विश्वविद्यालय के माननीय कुलपति एवं माननीय प्रतिकुलपति जी व मुख्य अतिथि के रूप में प्रसिद्ध गढ़वाली फिल्मों के निर्देशक यशस्वी जुयाल, ईएमडी की टीम, एनिमेशन एवं पत्रकारिता विभाग के संकाय के सदस्य एवं छात्र उपस्थित रहे। यह स्टूडियो एनिमेशन एवं पत्रकारिता के विद्यार्थियों के लिए प्रायोगिक कार्यशाला के रूप में भी कारगर सिद्ध होगा। ❑

पता-फोन परिवर्तन सूचना

अखण्ड ज्योति संस्थान का स्थान परिवर्तित हो गया है, नया पता अब इस प्रकार है—

अखण्ड ज्योति संस्थान

बिरला मंदिर के सामने, मथुरा-वृंदावन रोड, जयसिंहपुरा, मथुरा (281003)

बदले हुए नए फोन नंबर

दूरभाष नंबर : (0565) 2403940, 2412272, 2412273, 2972449

मोबाइल नंबर : 9927086291, 7534812036, 7534812037, 7534812038, 7534812039

कृपया इन मोबाइल नंबरों पर एस.एम.एस. न करें

नया ईमेल-akhand jyoti@akhandjyotisansthan.org

अखण्ड ज्योति पत्रिका हेतु बैंक खातों का विवरण

Beneficiary –	Akhand Jyoti Sansthan	I.F.S. Code	Account No.
S.B.I.	Ghiya Mandi Mathura	SBIN0031010	51034880021
P.N.B.	Chowki Bagh Bahadur, Mathura	PUNB-0183800	1838002102224070
I.O.B.	Yug Nirman Tapobhoomi, Mathura	IOBA0001441	144102000000006

विदेशी धन बैंक में सीधे जमा न करें, ड्राफ्ट द्वारा भेजें।

जमा रसीद की प्रति एवं विवरण ई-मेल, पत्र द्वारा भेजें; अन्यथा राशि का समायोजन नहीं हो पाएगा।

वासंती उल्लास का समय

वासंती उल्लास का एक गंभीर मूल्य होता है। न केवल, इस दृष्टि से कि इस समय में मौसम बदलते हैं और सृष्टि का सौंदर्य और निखरकर के आता है, बल्कि इस दृष्टि से भी कि इस समय एक विशिष्ट आध्यात्मिक ऊर्जा का प्रवाह सृष्टि में होता है। यह समय सांसारिक और आध्यात्मिक परिवर्तन का समय है। आज की परिस्थितियों में यह और भी ज्यादा महत्त्वपूर्ण परिवर्तन का संदेश बनकर आया हुआ समय है। ऐसा इसलिए; क्योंकि ये समय युग परिवर्तन का, व्यापक परिवर्तन का समय है।

आज की परिस्थितियाँ भी महाभारत के समान की ही परिस्थितियाँ हैं, अंतर मात्र इतना है कि इस बार का युद्ध किसी बाह्य भूमि पर नहीं, किसी कुरुक्षेत्र के मैदान पर नहीं, बल्कि मनुष्य के मन में हो रहा है। तनाव के कारण, उद्विग्नता के कारण, दुश्चिंतन के कारण—व्यक्ति सुख और संतोष को भूलकर के बैठा है और इसीलिए हर व्यक्ति के मन में महाभारत-सा मचा हुआ दिखाई पड़ता है।

चूँकि आदमी की कामनाएँ अनंत हो गई हैं, इसलिए जो भी व्यक्ति को मिलता है, वो व्यक्ति को कम ही नजर आता है और इसीलिए लोग पैसा कमाने के लिए गलत तरीकों का सहारा लेते हैं। घूस, भ्रष्टाचार, बेईमानी, अपराध के कारण क्या हैं—बस ये ही तो हैं। जिन्होंने खरबों कमा लिए वो तब भी भ्रष्टाचार क्यों करते हैं और जिनके मन में असंतोष है, उन्हें भला शांति कहाँ से मिल सकती है।

ऐसे व्यक्तियों के घर-परिवारों में सुख-चैन, स्नेह-सहयोग सब विदा हो जाते हैं। हरेक को अपनी ही इच्छाएँ नजर आती हैं। इसलिए कभी जिन घरों में स्वर्ग का दर्शन होता था, आज उन घरों में विग्रह और असंतोष के अलावा कुछ मिलता नहीं और यही बीमारी सारे समाज में फैल गई है—इसीलिए सब यहाँ एकदूसरे को ठगते-लूटते, दबाते-गिराते नजर आते हैं। किसी को किसी पर भरोसा नहीं और किसी को किसी से कोई आशा नहीं। यदि कोई कभी किसी पर भरोसा कर भी ले तो थोड़े दिन बाद धोखेबाजी का शिकार होकर अपने भोले मन को कोसते हुए नजर आते हैं।

परिणाम इन सबका क्या निकला है ? परिणाम यह निकला है कि आर्थिक क्षेत्र में भ्रष्टाचार है और नैतिक क्षेत्र में अनाचार है। जानते सब हैं कि कुरीतियाँ हैं, पर छोड़ना कोई चाहता नहीं। व्यक्ति के मन में जन्मी समस्या परिवार को प्रभावित करती है और फिर धीरे-धीरे पूरे समाज में फैल जाती है।

हम सोच के देखें कि सब ओर संकीर्णता का बोलबाला हो, किसी को भी अच्छाई पर चलने का विश्वास न रह जाए तो परिस्थितियाँ स्वतः ही महाभारत-सी बन जाती हैं। ये बातें भी अब काल्पनिक या रूपक नहीं, वरन वास्तविक हो चली हैं। विचारशील व्यक्ति जानते हैं कि यह संकट कितना गहरा है और मानवीय अस्तित्व आज कैसे जीवन-मरण के झूले में झूल रहा है। ऐसी विकराल परिस्थितियों में ही भगवान धर्म की रक्षा के दायित्व की पूर्ति के लिए अवतरण लेकर के आते हैं।

इन दिनों की जो असुरता है, इसका निवारण सद्बुद्धि के अवतरण से ही संभव है। इसीलिए इन दिनों भगवान आदिशक्ति गायत्री के रूप में, प्रज्ञा अभियान के रूप में, विचार क्रांति के रूप में प्रकट हो रहे हैं—इसी को प्रज्ञावतार कहकर पुकारा जा सकता है।

यह प्रज्ञावतार ही वस्तुतः निष्कलंक अवतार है। सही अर्थों में मात्र प्रज्ञा, विवेक, ज्ञान, बोध—ये ही निष्कलंक होते हैं और यही निष्कलंक हो सकते हैं। वर्तमान समय उसी अवतारी चेतना के प्रवाह का है।

भगवान ने गीता में अर्जुन से कहा भी है—'**कालोऽस्मि लोकक्षयकृत्प्रवृद्धो**' अर्थात मैं संपूर्ण लोकों का नाश करने वाला हूँ और इस समय, इन लोगों का संहार करने के लिए खड़ा हुआ हूँ। वे कहते हैं अर्जुन से कि 'चिंता मत कर और खड़ा हो जा; क्योंकि ये सारे शत्रु मेरे द्वारा पहले ही मारे जा चुके हैं। तू तो बस, यश को प्राप्त कर और निमित्त बन।'

अवतार ऐसे ही तूफानी प्रवाह का नाम होता है। बाढ़ आती है तो बाँधों को उखाड़ फेंकती है। आँधियाँ आती हैं तो शहरों के शहर बिखर जाते हैं। अवतार ऐसे ही तूफानी प्रवाह का नाम है, जिसके आगे अवांछनीय तत्त्व टिक नहीं पाते हैं।

असुरता उखड़ जाती है और देवत्व स्थापित होता है। आवश्यकता मात्र भगवान के साथ कंधे-से-कंधा मिलाकर चलने की है। आज की जरूरत भगवान के लिए निमित्त बनने की है। इस वासंती उल्लास के समय यही संकल्प हमें लेने की जरूरत है। ❑

एक चूहे ने भगवान को प्रसन्न करने के लिए तपस्या करनी प्रारंभ की। प्रसन्न होकर भगवान प्रकट हुए तो उन्होंने चूहे से पूछा—"वत्स! तुम्हें क्या चाहिए?" चूहा बोला—"भगवान! आपने मेरे दाँत इतने छोटे दिए हैं। इनसे कुछ भी कुतरने में बड़ा समय लग जाता है। आप मेरे दाँत बदल दें।"

भगवान ने कहा—"तुम्हें जैसे दाँत चाहिए हों, वैसे बता दो तो मैं बदल देता हूँ।" कुछ सोच-विचारकर चूहे ने निर्णय किया कि वह हाथी जैसे दाँत लेगा, वह ही दीखने में श्रेष्ठ लगते हैं। भगवान के 'तथास्तु' कहते ही चूहे के दाँत हाथी जितने बड़े हो गए, पर वैसा होते ही उसकी कठिनाइयाँ बढ़ गईं। इतने बड़े दाँत उठा पाना उसके लिए संभव नहीं था, सो वो एक जगह ही बैठा रह गया। परेशान होकर उसने पुनः भगवान से प्रार्थना की एवं अपने पुराने दाँत ही ले लिए। अब उसकी समझ में आया कि परमात्मा ने पहले से ही हरेक की शक्ति-सामर्थ्य निर्धारित कर रखी है और जो उसे भगवान का अनुग्रह मानकर संतोष के साथ स्वीकार करते हैं, वे ही सुखी रह पाते हैं।

युगावतार शिव रूप

सत्यं, शिवं, सुंदरम् के उद्घोषों का आह्वान है।
शुभ मंगल संदेश महा शिवरात्रि पर्व महान है॥

उत्थान-पतन का चयन मात्र, मनुजों के हिस्से आता है।
प्रभु का राजकुमार स्वयं के, भाग्यों का निर्माता है।
शिव शक्ति का इस सृष्टि में भरा हुआ सद्ज्ञान है।
शुभ मंगल संदेश, महा शिवरात्रि पर्व महान है॥

भावों में वाणी में कटुता, का न जहर समाता है।
मानव मृदुल स्वभाव जगत् में, संवेदना जगाता है।
नीलकंठ स्वामी इस जग के दुःखहर्ता भगवान हैं।
शुभ मंगल संदेश, महा शिवरात्रि पर्व महान है॥

सज्जन की कायरता ही, दुष्टों का जोश बढ़ाता है।
नीति, न्याय, औचित्य समर्थन, साहस-शांति प्रदाता है।
शिव विचार, शिव कर्म भावना, शिवसंकल्प प्रधान है।
शुभ मंगल संदेश, महा शिवरात्रि पर्व महान है॥

इस अनास्था के युग में अब, संकट बढ़ता जाता है।
सद्बुद्धि, सद्भाव, सर्वहित, नवयुग, सतयुग लाता है।
युगावतार गुरुवर तेरा कर रहा जगत् गुणगान है।
शुभ मंगल संदेश, महा शिवरात्रि पर्व महान है॥

—शोभाराम शशांक

भुवनेश्वर (उड़ीसा) में 'प्रांतीय युगसृजेता समारोह' अभूतपूर्व उल्लास एवं भावी कार्ययोजना के संकल्पों के साथ संपन्न

अखण्ड ज्योति
(मासिक)
R.N.I. No. 2162/52

www.awgp.org

प्र. ति. 01.01.2023
Regd. N0. Mathura-025/2021-2023
Licensed to Post without Prepayment
N0. : Agra/WPP-08/2021-2023

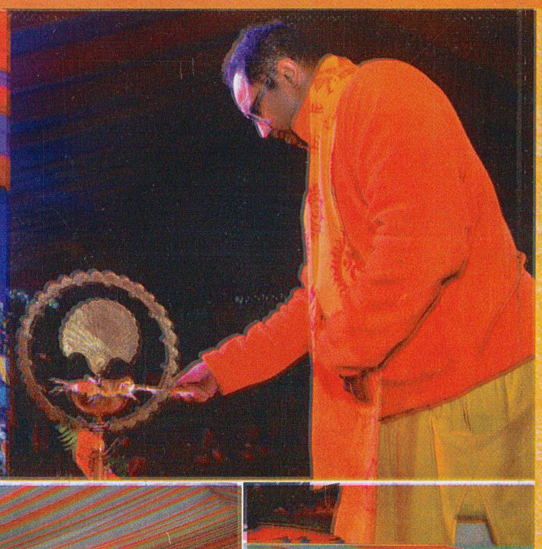

श्रावस्ती (उत्तर प्रदेश) में 'प्रांतीय युगसृजेता समारोह' अभूतपूर्व उल्लास एवं भावी कार्ययोजना के संकल्पों के साथ संपन्न

स्वामी, प्रकाशक, मुद्रक-मृत्युंजय शर्मा द्वारा जनजागरण प्रेस, बिरला मंदिर के सामने, जयसिंहपुरा, मथुरा से मुद्रित व अखण्ड ज्योति संस्थान, बिरला मंदिर के सामने, मथुरा-वृंदावन रोड जयसिंहपुरा, मथुरा-281003 से प्रकाशित। संपादक-डॉ. प्रणव पण्ड्या।

दूरभाष — 0565- 2403940, 2972449, 2412272, 2412273 मोबाइल - 09927086291, 07534812036, 07534812037, 07534812038, 07534812039

ईमेल- akhandjyoti@akhandjyotisansthan.org